॥ श्लोक ॥

प्रपंचातीतोऽहं विगत विकृतिः संगरहितो
चिदानंदोऽस्पंदो सकलजनजाते प्रविदितः ।
सदा मुक्तो सूक्तो श्रुतिषु परमात्मादि स्वरवै
रमायः पूर्णात्मा त्रिकसघन सत्यःसुविमलः ॥ १

॥ ॐ तत्सद्ब्रह्मणेनमः ॥

॥ अथ प्रस्तावना ॥

सकल सिद्धांतचूडामणि । कैवल्यकर । श्रीवेदांतसिद्धांत है ॥ ताके निश्चयअर्थ । अध्यारोप अपवादपूर्वक । कार्य (जगत्) । औ कारण (ब्रह्म) औ दृष्टा (चेतन) । औ दृश्य (देहादि अनात्मा) । औ साक्षी (आत्मा) । साक्ष्य (देहादि प्रपंच) । औ अधिष्ठान (चेतन) । अध्यस्त (प्रपंच) । इत्यादि प्रक्रियाका विचार अपेक्षित है ॥ सो विचार-संस्कृत अभ्यासविशिष्ट बुद्धिमान् अधिकारीनकूं-शारीरक (सूत्रभाष्य) आदिक प्रमेय ग्रंथनसें औ श्रीपंचदशी आदिक प्रकरण ग्रंथनसें औ खंडनादि आकर ग्रंथनसें होवे है ॥ औ संस्कृत अभ्याससें रहित बुद्धिमान् अधिकारिनकूं तो श्रीविचारसागर पंचदशी ईशाद्यष्टोपनिषद् आदिकके व्याख्यानरू[illegible] ग्रंथनसें बी सो विचार होवे है ॥ औ उक्त [illegible]ग्रंथनविषे मंदमतिवाले परम आस्तिक अधिकारिनकूं विचारके उदयअर्थ हमने श्रीविचारचंद्रोदय पूर्व किया है । औ ताके अर्थके विशेषज्ञा[न] विषे उपयोगी । तत्सदृश यह श्रीबालबोधिनी टीकासहित श्रीबालबोध किया है ॥ इन दोनूं ग्रंथन[ः]

के अभ्यासकरिके उक्त भाषाग्रंथनविषे सुखसें प्रवेश होवै है ॥ यातें इस ग्रंथका आरंभ निष्फल नहीं है । किंतु मंदमतिमानोंके महत् ग्रंथनविषे प्रवेशअर्थ सफल है ॥ यह (बालबोध) ग्रंथ मूलमात्र प्रथम स्वामी श्रीराघवानंदजीने छपवाया था । अब द्वितीय आवृत्तिमें मूलविषेभी कछुक अधिकता करी है औ याकी बालबोधिनी नामक टीका करी है ॥ याके "उपदेश" नाम करिके नव प्रकरणका विभाग किया है ॥ याकी टीका व्यवधानसें २५ दिनमें रची है । औ त्वरासें छपी है ॥ यातें कहूं अशुद्ध होवै तो सज्जनोंनें सुधारिके बांचना ॥ याका विषय नीचे धरी अनुक्रमणिकाविषे स्पष्ट लिख्या है ॥

॥ ल० पंडित पीतांबर पुरुषोत्तमजी ॥

॥ ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ॥

॥ श्रीबालबोधकी अनुक्रमणिका ॥

१-१६ अथ प्रथमोपदेश.

ग्रंथके च्यारी अनुबंधका वर्णन.

इति श्री प्रथमोपदेश.

१७-२२ अथ द्वितीयोपदेश.

सामान्य प्रश्नोत्तर वर्णन.

इतिश्रीद्वितीयोपदेश.

२३-२७ अथ तृतीयोपदेश.

ईश्वर औ सृष्टिका प्रश्नोत्तर.

इति नवमोपदेश.

ॐ तत्सद्ब्रह्मणेनमः

अथ पंडित श्री पीतांबरजी कृत

बालबोधिनी टीकासहित

॥ श्रीबालबोध ॥

प्रथमोपदेशप्रारंभः ॥ १ ॥

च्यारी अनुबंध वर्णन

टीकारंभगत मंगलाचरण

॥ दोहा ॥

श्री शिवसुत श्री शारदा । श्रीस
द्गुरु पदवंद ॥ बालबोध टीका र
चूं । होय बोध जिम मंद ॥ १ ॥

॥ मूलारंभगत वस्तु निर्देशरूप मंगलाचरण ॥

प्रथम ग्रंथकार मंदबुद्धिवाले जनोंके हितकार
करने अर्थ श्रीबालबोध नामक ग्रंथकूं प्रारंभ-
करतेहुये अद्वितीय आनंदरूप ब्रह्मका ज्यूंके त्यूं
स्वरूपका स्मरणरूप मंगल करै हैं:-

॥ दोहा ॥

जो अद्वैत अपार सुख । जामैं दुः

रूप न लेश ॥ दृढ अनुभवसें पाइ-
ये । सद्गुरुके उपदेश ॥ १ ॥

टीकाः — जो ब्रह्म अद्वैत कहिये सजातीय वि-
जातीय औ स्वगत भेदसें रहित है ॥ समान जा
तिवालेसें जो भेद सो सजातीय भेद कहिये है ।
जैसें ब्राह्मणका अन्य ब्राह्मणसें भेद है सो सजा
तीय भेद है ॥ अन्यजातिवालेसें जो भेद सो विजा
तीय भेद कहिये है । जैसें ब्राह्मणका शूद्रादिक
सें भेद है । सो विजातीय भेद है ॥ अपने अव-
यवनसें जो भेद सो स्वगत भेद कहिये है । जै
सें ब्राह्मणका अपने अवयव जो हस्त पाद मस्त
क आदिक अंग तिनसें भेद है । सो स्वगत भेद
है ॥ सर्वका अपना आप परब्रह्म जातें एक है । या
तें ताका सजातीय और ब्रह्म बनें नहीं । तातें सो
सजातीय भेदसें रहित है ॥ ब्रह्मचेतनसें भिन्न जो
जड प्रपंच सो ब्रह्मसें विजातीय प्रतीत होवे है ।
सो जो सत्य होवे तो ब्रह्ममें विजातीय भेद संभ
वे । जातें ब्रह्मसें भिन्न जो जड प्रपंच सो सत्य न
हीं है । किंतु रज्जुमें सर्पकी न्याई औ दर्पणमें ग-
गनके प्रतिबिंबकी न्याई औ स्वप्न जगत्की न्या-
ई ब्रह्ममें कल्पित होनेतें मिथ्या है । जो मिथ्या
वस्तु होवे सो वास्तव अधिष्ठानसें भिन्न होवे न-

हीं। यातें ब्रह्म विजातीय भेदसैं बी रहित है॥जा
तें ब्रह्म निरवयव है औ सत् चित् आनंद आदि
क जो ब्रह्मके धर्म हैं। वे ब्रह्मके अवयव नहीं।
किंतु चंदनके कटु सुगंध शीतल गुणकी न्या
ई औ पुष्पके स्पर्श रूप रस गंधरूप गुणकी न्याई
औ अग्निके दाह प्रकाशरूप गुणकी न्याई ब्रह्मके
स्वरूप हैं। विचारकियेसें परस्पर अथवा ब्रह्मसें
न्यारे होवैं नहीं। यातें वे ब्रह्मके स्वरूपही हैं।
याहीतें तिनका किया हुवा स्वगत भेद बी ब्रह्ममें
नहीं है। तातें ब्रह्म स्वगत भेदसें बी रहित है॥ इ
स रीतिसें ब्रह्म सजातीय विजातीय औ स्वगत-
भेदसें रहित है। यातें अद्वैत है॥ फेर जो ब्रह्म
अपार है। पार नाम अंतका है। सो अंत। देश
काल वस्तुके भेदसें तीन भांतिका होवै है। तातें
रहित ब्रह्म है। यातें सो अपार है। जो वस्तु सर्व
देशविषे व्यापक न होवै। किंतु किसी एक देश
विषे होवै। ताका देशतें अंत होवै है॥ जैसें घ
ट जो है सो सर्व देशविषे व्यापक नहीं। किंतु कि
सी एक देशविषे होवै है। यातें सो देशतें अंत-
वाला है॥ ब्रह्म जातें किसी एक देशविषे हीं न
हीं। किंतु सर्व देशनविषे व्यापक है औ सर्व देश
बी ब्रह्म मैं मायातें कल्पित हैं। तातें ब्रह्मका दे-

यातें अंत नहीं ॥ औ जा वस्तुका जन्मतें पूर्व औ
नाशके पीछे अभाव होवै । ताका कालतें अंत हो
वै है ॥ ब्रह्म जातें जन्म औ नाशतें रहित है । तातें
नित्य है। जातें नित्य है । यातें ताका कालतें अंत
नहीं ॥ जा वस्तुका अन्य वस्तुके साथि भेद होवै॥
ताका वस्तुतें अंत होवै है । जैसें घटका वस्त्रसें
भेद है । यातें घटका वस्त्ररूप वस्तुतें अंत कहि
ये ॥ ब्रह्मविषै जड चेतनरूप सर्व वस्तु कल्पित
है । जो वस्तु जामें कल्पित है । सो ताहीका स्वरू
प है ॥ जैसें मृत्तिकामें कल्पित घट मृत्तिकाका स्व
रूप है औ सुवर्णमें कल्पित कुंडलादिक सुवर्ण-
का स्वरूप है ॥ तैसें जातें सर्व वस्तु ब्रह्ममें कल्पि
त है । तातें सो ब्रह्मरूप है । याहीतें ब्रह्म सर्वा-
त्मा है ॥ जातें ब्रह्म सर्वात्मा है । तातें ब्रह्मका को
ई भी वस्तुसें भेद नहीं । जातें ब्रह्मका कोइ व
स्तुके साथि भेद नहीं । तातें ब्रह्मका कोइ वस्तुतें
अंत नहीं ॥ इस रीतिसें परब्रह्म । देश काल औ
वस्तुकृत अंतसें रहित है । यातें अपार है ॥ ९ ।
सो ब्रह्म सुखरूप है ॥ परम प्रेमका जो विषय
होवै । सो सुख कहिये है । ताहीकूं आनंदभी क
हे है ॥ ब्रह्म जातें चींटीसें लेके ब्रह्मापर्यंत सर्व
प्राणिनकूं । वांछित विषयकी प्राप्तिसें इच्छाके

तिरोधानरूप निमित्तसैं एकाग्र भये चित्तविषै। अपने प्रतिबिंबरूप विषयानंदका देनेवाला है औ सर्वका प्रत्यगात्मा होनेतैं परम प्रीतिका विषय-(स्थानक) है। यातैं सुखस्वरूप है॥ इहां यह शंका होवै हैः— उक्त प्रतिबिंबरूप विषयसुख औ ताके साधन (निमित्त) चंदन पुष्प स्त्री आदिक। तिनमैं बी प्रीति होवै है। यातैं वेबी प्रीतिके विषय हैं। याहीतैं प्रिय हैं। तिनमैं स्वरूप सुखके लक्षणकी अतिव्याप्ति होवैगी? या शंकाका यह समाधान हैः-
जामैं दुःख न लेश। कहिये जो सुख। दुःखके संबंधसैं रहित है॥ उक्त जो विषयसुख अरु ताके साधन हैं। वे अनंत दुःखनसैं आवृत हैं। यातैं दुःखसैं संबंधवाले हैं। यह स्वरूपसुख तैसा नहीं। किंतु दुःख औ ताके साधनकी कल्पनाका अधिष्ठान होनेतैं। कल्पित [illegible] संबंधसैं रहित रज्जुकी न्याई दुःखके संबंधसैं रहित है। यातैं विषयसुख औ [illegible]॥ धनोंसैं विलक्षण होनेतैं स्वरूपसुखकी ति[illegible]मैं अतिव्याप्ति नहीं॥ किंवा विषयसुखके जो साधन हैं वे स्वतः प्रीतिके विषय नहीं। किंतु विषय-सुखके हेतु होनेतैं प्रीतिके विषय हैं। यातैं वे प्रिय कहिये हैं॥ औ जो विषयसुख है सो परम प्रीतिका विषय नहीं। किंतु प्रीतिमात्रका विषय [illegible] यातैं

निरतिशय कहिये है औ जो स्वरूपसुख है सो परमपी
तिका विषय है। तातें प्रियतम कहिये है ॥ यातें वि
षयसुख औ ताके साधनमें स्वरूपसुखके लक्षण-
की अति व्याप्ति नहीं है ॥ इहां सुख शब्द जो है सो
सत् चित् आदिकनका बी उपलक्षण (बोधक) है ॥
फेर जो ब्रह्म सद्गुरु कहिये ब्रह्मनिष्ठ गुरु। ताके मु
खसें सुन्या जो महावाक्यका उपदेश। तासें उत्प-
न्न भया जो संशय औ विपर्ययसें रहित दृढ अपरो
क्ष ज्ञानरूप अनुभव। तासें जिज्ञासुकूं प्राप्त होवे है
ऐसा है ॥ इहां ब्रह्मकूं सर्वात्मा होनेतें ताका अहं श
ब्दके अर्थरूप प्रत्यगात्मातें किंचित् भेद नहीं है ।
यातें मैं सर्वात्मा ब्रह्महूं। यह गूढ अभिप्राय अर्थ
तें जानिये है ॥ यहहीं वस्तु निर्देशरूप मंगल हुवा
है औ याहीतें ब्रह्म आत्माकी एकतारूप ग्रंथका
विषय सामान्यतें सूचन किया ॥ १ ॥

अब अर्ध दोहेसें जिज्ञासुकी ग्रंथमें प्रवृत्ति है
नेअर्थ सर्व अनर्थकी निवृत्ति औ आनंदकी प्राप्ति
रूप ग्रंथके प्रयोजनकूं सूचन करते हुये। वस्तु नि
र्देशरूप मंगलकी समाप्ति करे हैं औ दोहेके उ
त्तरार्धमें गुरुप्राप्तिपूर्वक ग्रंथके आरंभकी प्रतिज्ञा
करै हैं:—

॥ दोहा ॥

मंगल आनंदरूप है। सर्व शोक को नाश ॥ सद्गुरु चरण मनाइके करहूं बोध विकाश ॥ २॥

टीकाः- सर्व शोक जो अविद्या तत्कार्यरूप अनर्थ (बंध)। ताका नाश कहिये निवृत्ति। तिसकरि युक्त जो आनंदरूप ब्रह्म है। सो विष्णु आदिक सर्व देवनका अधिष्ठान होनेतें मंगलरूप है। यातें ब्रह्मके स्मरण किये हुये सर्व देवनका स्मरण अर्थतें सिद्ध भया ॥ जैसें वृक्षके मूलविषे जलके सिंचन किये हुये वृक्षके स्कंध शाखा आदिक सर्व अंग तृप्त होवें हैं औ प्राणकूं आहार दिये हुये सर्व इंद्रियनकूं तृप्ति होवे है। तैसें ब्रह्मके स्मरण किये हुये सर्व देवनका स्मरण होवे है ॥ अब गुरुभक्तिकूं ज्ञानका मुख्य साधन होनेतें ताकूं सूचन करे हैं:- सत् जो ब्रह्म। ताका जो उपदेश करे। सो सद्गुरु कहिये है ॥ ता सद्गुरुके चरणोंकूं ध्यानादि द्वारा मनाइके कहिये पूजिके। मैं ग्रंथरचनाद्वारा मंदबुद्धि-पुरुषनकूं बोधका विकाश (विशेषकरिके प्रकाश) करूं हूं ॥ २॥

॥१॥ जैसें ग्रहके च्यारी पाद होवे हैं। तिसविना ग्रहकी स्थिति होवे नहीं। तैसें सकल ग्रंथनके च्यारी अ

नुबंध होवै हैं । तिनबिना ग्रंथकी रचना होवै नहीं। औ तिनके ज्ञानबिना विवेकी पुरुषकी ग्रंथविषै प्रवृत्ति होवै नहीं ॥ यातैं ग्रंथके आरम्भमें च्यारी अनुबंध अवश्य कहे चाहिये ॥ यद्यपि इस ग्रंथकूं वेदांतका प्रकरणरूप होनेतें वेदांतके जो अनुबंध हैं। सोई इसके बी हैं ? तथापि जिज्ञासुके जाननेअर्थ संक्षेपतें च्यारी अनुबंध कहे चाहिये ॥ वे अनुबंध अब प्रयोजन पूर्वक कहे हैं :-

२ ॥ दोहा ॥

अधिकारी संबंध अरु। विषय प्रयोजन आन ॥ ये चारी अनुबंध लखि। पेखे ग्रंथ सुजान ॥ २ ॥

टीका:- अधिकारी संबंध विषय औ प्रयोजन। इन च्यारीका नाम अनुबंध है॥ अपने ज्ञानके अनंतर जो ग्रंथके साथि मुमुक्षुकूं बांधता (जोडता) है। सो अनुबंध कहिये है । इन च्यारी अनुबंधनकूं जानेबिना सुजान जो विवेकी पुरुष। ताकी ग्रंथविषै प्रवृत्ति होवै नहीं औ इन च्यारी अनुबंधनकूं जानिकै सुजान पुरुष ग्रंथकूं देखे कहिये विचारै है। यातैं इन च्यारी अनुबंधनका ग्रंथके आरंभमें अवश्य कथन करना जोग्य है ॥२॥

३ ॥ अधिकारी वर्णन ॥

॥ दोहा ॥

नास्यो मल विक्षेप जिस । शेष
रह्यो अज्ञान ॥ साधन चव संयु
क्त जो । सो अधिकारी जान ॥ ४ ॥

टीकाः- जैसें स्थूल देहविषे वात कफ औ पित्तरू
प तीन दोष होवे हैं । तिनके निवारणअर्थ धन्वंत
रि आदिकोनें आयुर्वेद किया है ॥ तैसें अंतःकर-
णविषेबी मल विक्षेप औ अज्ञानरूप तीन दोष
होवे हैं । तिनके निवारणअर्थ कर्मकांड । उपास-
नाकांड । औ ज्ञानकांड । इन तीन कांडकरियुक्त
च्यारी वेद परमेश्वरनें किये हैं ॥ मल नाम पापका
है । सो पाप संस्काररूप होनेतें अतिशय सूक्ष्म है
। प्रत्यक्ष देखनेमें आवता नहीं तथापि अशुभ
वासनाद्वारा तिसका अनुमान होवे है ॥ जा पुरु-
षकूं निषिद्ध कर्मकी वा विषयनकी इच्छा होवे है।
ताके चित्तमें अशुभ वासना है । याहीतें सो " मल-
दोषकरि युक्त है" यह जानिये है ॥ यातें ताकूं नि-
ष्काम कर्म वा सर्व भूतनपर दया वा ईश्वर नाम
का उच्चारण आदिक कर्तव्य है । काहेतें निष्काम
कर्मतें वा सर्व भूतनपर दयातें वा ईश्वर नामके
उच्चारणतें । मलदोषकी निवृत्ति होवे है ॥ तिनमें
ईश्वर नामका रीतिपूर्वक जो उच्चारण है सो पापरू

प मल औ विक्षेप (चंचलता) इन दोनूं प्रकारके म
लका नाशक है। औ अन्यकर्म आदिक केवल पाप
रूप मलके नाशक हैं ॥ चित्तकी चंचलताका नाम
विक्षेप है। जाका चित्त वेदांतके श्रवण आदिकूं वि
षे किंवा महावाक्यके अर्थरूप स्वस्वरूपविषे -
स्थिर होवै नहीं। किंतु अन्य विषयविषे फसता र
है। ताका चित्त चंचल है। याहीतें सो पुरुष विक्षेप
दोषकरि युक्त है। यह जानिये है ॥ यातें ताकूं ईश्व
रनाम अजपा मंत्रके उच्चारण औ ईश्वर मूर्तिके -
ध्यानसें आदिलेके उपासना कर्तव्य है ॥ काहेतें उ
पासनासें चित्तकी एकाग्रता होयके विक्षेप दोषकी
निवृत्ति होवै है ॥ अथवा शरीर वाणी मन औ ध
न करिके करी जो ईश्वर बुद्धिसें गुरुसेवा। तासें
कर्म उपासना विनाही चित्तकी शुद्धि औ एकाग्र-
ता होवै है॥ अथवा जिसकी मंद जिज्ञासाकरिके
बी वेदांतके श्रवण वा अभ्यासमें प्रीतिपूर्वक प्रवृ-
त्ति भई है। ताकूं बी कर्म उपासनासें विनाही चित्त-
की शुद्धि औ एकाग्रता होवै है ॥ "ब्रह्मरूप आत्मा
कूं मैं नहीं जानता हूं" इस व्यवहारका जो हेतु। सो
अज्ञान है ॥ जिसके चित्तमें ऐसी प्रतीति होवैहै ।
सो पुरुष अज्ञानी है। ताकूं तत्त्वज्ञान संपादन कर-
ना योग्य है। काहेतें तत्त्वज्ञानसें अज्ञानकी निवृत्ति

होवै है। अन्य साधनतें नहीं ॥ परंतु सो तत्वज्ञान अधिकारीकूं प्राप्त होवै है। सो अधिकारी यह हैः- जिसका इस जन्मविषे या जन्मांतरविषे किये निष्कामकर्म औ उपासनासें मल औ विक्षेप दोष नाश भया है औ तीसरा अज्ञानदोष शेष रह्या है अरु याहीतें जो विवेक आदिक च्यारी साधनकरि संयुक्त भया है। सो पुरुष या ग्रंथका औ ग्रंथके विचारद्वारा आत्मज्ञानका औ आत्मज्ञान द्वारा मोक्षका अधिकारी है ॥४॥

४ ॥ च्यारी साधन नाम वर्णन ॥

॥ दोहा ॥

आदि विवेक विराग पुनि। षट् संपत्ति सुधारि॥ चौथी चहे मुमुक्षता। यह है साधन चारि ॥५॥

टीकाः- आदि कहिये प्रथम विवेकरूप साधन है औ पुनि कहिये दूसरा विरागरूप साधन है औ तीसरा षट्संपत्तिरूप साधन है। ताकूं जिज्ञासु धारिके चतुर्थसाधनरूप मुमुक्षुताकूं चहे नाम इच्छे। यह चारी साधन हैं ॥५॥

५ ॥ विवेक लक्षण ॥

॥ दोहा ॥

आतम नित्य क्रियारहित। जग भ

नित्य चल जान ॥ सार असार वि-
चार दृढ । यह विवेक मन मान ॥६॥

टीका:- आत्मा नित्य कहिये अविनाशी है औ क्रियारहित कहिये अचल है अरु जगत् अनित्य कहिये विनाशी है औ चल कहिये क्रियासहित है। ऐसें जानिके क्षीरनीरके भेदक हंसपक्षीकी न्याई। सार जो आत्मा औ असार जो अनात्मा तिनका दृढ विचार कहिये भेद ज्ञान। यह विवेक है ॥ ऐसें मन विषे मान कहिये निश्चय कर॥ शंका:- विवेककालमें "जगत् अनित्य है। अर्थात् मिथ्या है" ऐसें जब जान्या। तब फेर प्रपंचके बाधअर्थ उत्तर साधनसहित ज्ञानका क्या प्रयोजन है? समाधान:- यद्यपि विवेककालसें परोक्षता करिके जगत्कूं मिथ्या जानता है। तथापि अपरोक्षकरिके मिथ्या जान्या नहीं। यातें प्रपंचके अपरोक्षबाध अर्थ। उत्तर (पीछले) साधन सहित ज्ञानका प्रयोजन है इति ॥६॥

७ ॥ वैराग्य लक्षण ॥

॥ दोहा ॥

सर्व लोकके भोगकूं। चित्त अनित्य
पिछानि ॥ वायस विष्ठावत्त तजे।
सो विराग जिय जानि ॥७॥

टीकाः—"हे अर्जुन! ब्रह्मलोकसैं आदि लेके सर्व लोक पुनरावृत्तिवाले हैं" यह अर्जुनके प्रति श्रीकृष्णका वचन है। यातें इसलोकसैं आदि लेके ब्रह्मलोक पर्यंत सर्व लोकनके भोगकूं प्रमाण औ युक्तिकरिके अपने चित्तविषै अनित्य जानिके तिनकूं वायस जो काकपक्षी ताके विष्टाकी न्याई चित्तसैं त्यागे॥ ऐसैं दोषदृष्टिसैं जो इसलोक अरु परलोकके भोगनकी इच्छाका त्याग। सो वैराग्य है। ऐसैं अपने अंतःकरणमैं जान॥

इहां काकविष्टाका जो ग्रहण है। सो विष्टाकी विष्टारूप होनेतें अतिशय ग्लानि (दोषदृष्टि) की विषयताके सूचन करने अर्थ है॥ इहां यह विशेष हैः— त्यागकी इच्छा वा इच्छारहितताका नाम वैराग्य है॥ सो वैराग्य यतमान। व्यतिरेकि। एकेंद्रिय औ वशीकार भेदतें च्यारी प्रकारका है॥ मंद विवेकका नाम यतमान है॥ औ नाकुली (नकुलवेल) के आश्रयसैं सर्पके साथि युद्ध करनेवाले नकुलकी न्याई। सत्संगके आश्रयसैं दुर्गुणोके त्यागमैं औ सद्गुणोके ग्रहणमैं जो उत्साह सो व्यतिरेकि है॥ औ इंद्रियनके निग्रहरूप दमका नाम एकेंद्रिय है॥ औ मनके निग्रहरूप शमका नाम वशीकार वैराग्य है॥ तिनमैं वशीकर वैराग्य। फेर मंद तीव्र औ

॥ षट्संपत्ति नाम वर्णन ॥

॥ दोहा ॥

शम दम उपरति तितिक्षा । समाधा
न बिस्वास ॥ छको जो साती कही ।
षट्संपत्ती तास ॥८॥

टीका:- शम । दम । उपरति । तितिक्षा । समाधा
न औ बिश्वास कहिये श्रद्धा । इन छहोंकी जो सा[illegible]
ताकूं पंडित जनोंने षट्संपत्ति कहा है ॥८॥

॥ शम दम लक्षण ॥

॥ दोहा ॥

विषयवासना मत्त मन । ताको जय
शम मान ॥ इंद्रियगन शब्दादि र-
त । ताको जय दम जान ॥९॥

टीका:- विषयवासनारूप मदकरि उन्मत्त भया जो

मनरूप हस्ती। ताका विषयनविषे अत्यंत दोषदृ
ष्टिरूप अंकुश करिके जो जय कहिये स्वाधीन क
रना। सो शम है। ऐसें मान॥ औ शब्द आदिक
पंच विषयरूप मार्गविषे प्रीतिवाला इंद्रियनका स
मुदायरूप जो अश्व है। तिनका विषयनविषे दोष
दृष्टिपूर्वक शास्त्र चिंतनादिरूप चाबुकसें जो जय क
हिये स्वाधीन करना। सो दम है। ऐसें जान॥

इहां यह रहस्य हैः- शरीररूप रथ है। ता
के इंद्रियरूप अश्व हैं। तिनकी मनरूप लगाम है।
ता रथका बुद्धिरूप सारथि है। तिस रथमें स्थित
आत्मारूप रथी है॥ जिस रथीका बुद्धिरूप सा
रथि अप्रमादी है। तिसके इंद्रियरूप अश्व कुमा-
र्गमें जाते हैं॥ औ ता रथीकूं नरकादि दुःखरूप
खड्डेमें डारते हैं॥ औ जिस रथीका बुद्धिरूप सार
थि अप्रमादी है। तिसके इंद्रियरूप अश्व सुमार्ग
में जाते हैं औ तिस रथीकूं स्वर्गादिरूप वा मोक्ष
रूप धाममें पहुंचावते हैं॥ जातें ऐसें है यातें मुमु
क्षुकूं अपनी बुद्धिरूप सारथिका यथेच्छाचार य
थेच्छावाद औ यथेच्छा भक्षणरूप प्रमाद दूर करि
के। तिस द्वारा इंद्रियरूप अश्व। सत्मार्गमें जो
डनें योग्य हैं॥ इहां बुद्धिरूप सारथिका जो वश
करना है सो शम है औ इंद्रियरूप अश्वनका जो

वश करना है सो दम है ॥ यातें सारथिके आधीन अश्व औ अश्वनके आधीन सारथिकी न्याई बुद्धि औ इंद्रियनकी बी परस्पर आधीनता है ॥ तातें पूर्व कहे जो शम दम। सो परस्पर सापेक्ष हैं ॥ ऐसें सारी षट्संपत्तिबी परस्पर सापेक्ष है ॥ यातें एक साधन करिके गिनी है। यह जानना इति ॥९॥

९ ॥ उपरति तितिक्षा लक्षण ॥

॥ दोहा ॥

प्राप्त विषयको त्यागनो। उपरति ता
हि कहंत ॥ शीतोष्णादिक सहनकौं।
कहें तितिक्षा संत ॥१०॥

टीकाः– अप्राप्त विषयका जो दोष दृष्टि करिके इच्छाका अभावरूप त्याग है। सो वैराग्य है ॥ तिसतें विलक्षण। प्राप्त विषयका जो त्याग करना। कहिये फेर तिसविषे दीन होना नहीं। ताकूं वैराग्यकी फलरूप उपरति कहेते हैं ॥ औ श्रवण आदिक साधनके प्रसंगमें तिनके विरोधी जो शीतउष्ण। क्षुधा तृषा। सुखदुःख। हानि लाभ। आदिक द्वंद्व धर्म। ताके सहन करनेकूं संतजन तितिक्षा कहे हैं॥ उक्त तितिक्षाकूं त्यागिके द्वंद्व धर्मके निवारणविषे तत्पर होनेवाले मुमुक्षुकूं। वेदांतके श्रवणादिक विषे व्यवधान होवे है ॥ यातें तितिक्षाबी श्रवणविषे-

उपयोगी होनेतें श्रवणका साधन है ॥ इस प्रकार और विवेकादिकबी श्रवणके साधन हैं। ऐसें जानना ॥१०॥

१० ॥ समाधान श्रद्धा लक्षण ॥

॥ दोहा ॥

ब्रह्ममांहि एकाग्र चित। समाधान
कहि तास ॥ शास्त्र गुरूके वाक्यमें।
श्रद्धा सो विश्वास ॥११॥

टीकाः- ब्रह्मरूप लक्ष्यविषे जो चित्तकी एकाग्रता कहिये तत्परता है। ताकूं समाधान कहना ॥ पूर्व उपासना करिके जो चित्तकी एकाग्रता होवे है। सो सगुण ब्रह्म वा तिसके सूचक प्रतिमा आदिकविषे होवे है। औ इहां जो चित्तकी एकाग्रता कही। सो निर्गुण ब्रह्मविषे चित्तकी तत्परता रूप है। यह तिनका भेद है॥ औ वेदांत शास्त्र अरु ब्रह्मनिष्ठ गुरूके वचनमें जो विश्वास कहिये आस्तिकता (भरोसा)। सो श्रद्धा है ॥

इहां सारी षट् संपत्तिके मध्य श्रद्धाका अंतविषे जो कथन किया। ताका यह अभिप्राय है :- जैसें वृक्षका फल जो है सो अंतविषे होवे है। यातें वृक्षके सर्व अंगनमें फल श्रेष्ठ है औ याहीतें

मादिक सर्व साधनोमैं श्रद्धा जो है सो श्रेष्ठ है औ याहीतें सो मुख्य है। यातें ताका अंतमें कथन किया है ॥ जैसें फल उत्पत्तिके अनंतर फलकी परिपाक अवस्था होवे है। तैसें श्रद्धाकी उत्पत्तिके अनंतर मुमुक्षुता होवे है ॥ यातें मुमुक्षुता श्रद्धारूप फलकी परिपाक अवस्था है। याहीतें ताका श्रद्धाके अनंतर कथन है ॥

इहां यह रहस्य है:- शास्त्र औ गुरु आदिकके वाक्यमें जो श्रद्धा है। सो ईश्वर औ गुरु आदिककी भक्तिविना होती नहीं। किंतु जाके चित्तमें प्रथम ईश्वर गुरु औ अन्य जो ऋषि मुनि अरु ब्रह्मनिष्ठ भये हैं। तिनमें पूज्य बुद्धि करिके प्रीतिरूप भक्ति होवे। ताहीकूं वेद आदिक शास्त्रके औ गुरु आदिकके वाक्यमें भक्तिके अनुसार (जैसी भक्ति तैसी) श्रद्धा होवे है ॥ यातें भक्ति जो है सो ज्ञानका औ ज्ञानके सर्व साधनोंका मुख्य कारण है औ याहीतें श्रद्धाकूं भक्तिपूर्वक होनेतें सर्व साधनोविषे मुख्य साधनता है ॥

इहां यह रूपक है:- मोक्षके साधनोकी संपत्तिरूप वृक्ष है। ताका निष्काम कर्मादिरूप प्रयत्नसें किया शुद्ध चित्तरूप क्यारा है। ताका ईश्वर गुरु आदिककी भक्तिरूप बीज है। ताका मंद विवेक

रूप अंकुर है औ दृढ विवेकरूप पेड है। ताकी वि
विध वैराग्यरूप शाखा हैं। ताका शमादि पंचसाध
नरूप पुष्पनका गुच्छ है। ताके ऊपर गुरुके वाक्य-
का श्रवणरूप नर वृक्षके पुष्पनका संयोग है। औ
श्रवण मनन अरु निदिध्यासन आदिक अन्यसाध
नरूपता फलसंबंधी अन्य प्रयत्न हैं। ताका श्रद्धा
रूप फल है औ मुमुक्षुतारूप फलकी परिपाक द
शा है औ ज्ञानरूपता फलका रस है। ता फल-
मेंबी निष्प्रयोजन भक्तिरूप बीज रहे हैं। ता फल
का ज्ञानरूप जो रस है। सो श्रद्धारूप फलके आ-
धीन है॥ काहेतें जो उक्त श्रद्धारूप फल सूक जा
वै तो ताका ज्ञानरूप रस बी सूक जाता है॥ या
तें ज्ञानरूप रस। श्रद्धारूप फलके आधीन है॥ औ
ता फलके भक्षणद्वारा उदरमें स्थापन किये हुये
ताका रस बी उदरमें स्थित होवै है॥ यातें जीवत अ
वस्थापर्यंत विद्वानूके चित्तमें शास्त्र औ गुरुनके
वाक्य करिके निर्णीत अर्थविषै स्वाभाविक श्रद्धा
रहे है। तावत्पर्यंत ज्ञाननिष्ठा बी रहे है॥ ता फ
लकूं कोइ अनभिज्ञ पुरुष। ताके भक्तिरूप स्वादि
ष्ट बीजकी उपेक्षा पूर्वक भक्षण करे है। ताकूं अधि
क स्वाद होवै नहीं औ कोइ अभिज्ञ पुरुष। भ
क्तिरूप बीजसहित औ ज्ञानरूप रस सहित ता फ

ळकूं भक्षण करे है। ताकूं ताका अधिक स्वाद अ नुभव होवै है ॥ इस रीतिसें उक्त श्रद्धारूप फलका जीवन्मुक्तिरूप स्वाद है औ विदेहमुक्तिरूप त ज्जन्य क्षुधानिवृत्ति पूर्वक तृप्ति है इति ॥११॥

१५ ॥ मुमुक्षुताका लक्षण ॥

॥ दोहा ॥

भूख्यो इच्छे अन्न ज्यूं। त्यूंहि मोक्ष
की चाह ॥ कहहीं ताहि मुमुक्षता।
कोविद मुनि मुनि नाह ॥१२॥

टीका:– क्षुधातुर पुरुष जैसें अन्नकूं इच्छता है। तैसेंही जो मोक्षकी तीव्र इच्छा। ताकूं कोविद क हिये पंडित औ मुनि कहिये सद्गुणसंपन्न। ऐसे मुनि जो संन्यासी तिनके नाह कहिये आचार्य। सो मुमुक्षुता कहते हैं ॥ यह कही जो मुमुक्षुता। सो सर्व साधनोंसें पूर्वबी मंदरूप होवै है। काहेतें "प्रयोजनके उद्देशविना मंदपुरुषबी कहीं प्रवृत्त होवै नहीं" इस न्यायतें मोक्षरूप फलकी इच्छावि ना निष्काम कर्म आदिक साधनो विषे किसीकी प्रवृत्ति होवै नहीं। यातें मंद मुमुक्षुता तो सर्वसा धनोतें पूर्वबी होवै है। परंतु सो तीव्र नहीं है औ अन्य साधनोंके सिद्ध भये पीछे तीव्र मुमुक्षुता- होवै है। सोइ गुरुशरणपूर्वक श्रवणादिक पीछे

ले साधनोविषै प्रवृत्तिकी हेतु होवै है इति ॥१२॥

१२ ॥ अधिकारीके तांई कर्तव्यकी सूचना॥

॥ दोहा ॥

अस अधिकारी जो कह्यो। सोई शि
ष्य सुजान ॥ सद्गुरु चरण नमाइ शि
र। शरण होवहीं आन ॥१३॥

टीकाः- ऐसा कह्या जो अधिकारी। सोई सुजान शिष्य है॥ सो क्या करे किः- सद्गुरुके चरणोंके प्रति आयके मस्तक नमायके विधिवत् शरण होवै॥१३॥

१३ ॥ गुरु लक्षण ॥

॥ दोहा ॥

अद्वयको उपदेश दे। सोई श्री गुरु
देव॥ ब्रह्मनिष्ठ श्रोत्रिय सदा। क
रे शिष्य तिहि सेव ॥१४॥

टीकाः- जो ब्रह्मनिष्ठ कहिये मार्गका अनुभवी होयके मार्गदर्शक पुरुषकी न्याई ब्रह्मस्वरूपमें निष्ठावान् होवै। औ श्रोत्रिय कहिये मार्गके चिन्होंका वेत्ता होयके मार्गदर्शक पुरुषकी न्याई श्रुतिनके अर्थका वेत्ता होवै। याहीतें शरणागत शिष्यके तांई मार्गदर्शक पुरुषकी न्याई अद्वैत ब्रह्मका उपदेश देवै। सोई श्रीमान् कहिये ब्रह्मवि-

धारूप अंतर्यामी गुरुदेव है ॥ यातें शरणागत शिष्य। तिस गुरुकी सदा सेवा करे ॥ ज्ञानतें पूर्व जो वेदांत शास्त्र गुरु औ ईश्वरकी सेवा है । सो ज्ञानकी सिद्धिअर्थ है औ ज्ञान भये पीछे जो इन तीनकी सेवा है । सो कृतघ्नतारूप दोषकी निवृत्तिअर्थ है ॥ इस अभिप्रायसें इहां "सदा सेवा करे" यह कह्या ॥१४॥

॥ इति अधिकारी वर्णन ॥

---

१४ ॥ अथ संबंध वर्णन ॥

॥ दोहा ॥

प्रतिपादक यह ग्रंथ है। ब्रह्म अहै
प्रतिपाद्य ॥ प्रतिपादक प्रतिपाद्यता।
ता संबंधहि आद्य ॥१५॥

टीकाः– यह ग्रंथ ब्रह्मका प्रतिपादक है औ ब्रह्म इस ग्रंथ करिके प्रतिपाद्य है॥ जो प्रतिपादन करनेवाला होवै सो प्रतिपादक कहिये है। यह ग्रंथ ब्रह्मका प्रतिपादन करनेवाला है। यातें प्रतिपादक है॥ औ जाका प्रतिपादन करिये सो प्रतिपाद्य कहिये है ॥ ब्रह्म इस ग्रंथमें प्रतिपादन करियेहै। यातें प्रतिपाद्य है॥ इन दोनूंका परस्पर प्रतिपादक प्रतिपाद्यता कहिये प्रतिपादक प्रतिपाद्यभा

वरूप संबंध प्रसिद्ध है ॥ सो आद्य कहिये प्रथ म है ॥ इससें आदि लेके अन्य अनेक प्रकारके संबंध कहे हैं ॥ सो विस्तारके भयसें लिखे नहीं ॥ इहां संबंधरूप अनुबंधकी कल्पनाका यह प्र योजन है:- जिस वस्तुका जिससें संबंध है। तिस वस्तुका तिसविषे उपयोग होवै है ॥ जैसें कु लालादिकका घटसें संबंध है। यातें तिनका घट विषे उपयोग होवै है ॥ औ जिस वस्तुका जिस-सें संबंध नहीं तिसवस्तुका तिसविषे उपयोग होवै नहीं ॥ जैसें चक्षुका वायु अरु आकाशसें संबंध नहीं। यातें चक्षुका वायु औ आकाशविषे उप योग होवै नहीं ॥ तैसें ग्रंथका औ ब्रह्मका जो परस्पर संबंध नहीं होवै। तो ग्रंथका ब्रह्मविषे औ ब्रह्मका ग्रंथविषे कछु उपयोग सिद्ध होवै नहीं ॥ यातें परस्परके परस्परविषे उपयोगके निश्चय अर्थ तिनके संबधकी कल्पना करी है ॥ ऐसें अ न्य संबंधनविषे बी जानि लेना ॥ जैसें पिताका पु त्र जन्य है। यातें पिताका अपने जन्य पुत्रसें ज-न्यतारूप संबंध हैं ॥ तैसें जातें ग्रंथका ब्रह्म प्र तिपाद्य है। यातें ग्रंथका अपने प्रतिपाद्य ब्रह्मसें प्रतिपाद्यतारूप संबंध है ॥ औ ब्रह्मका ग्रंथ प्रति पादक है। यातें ब्रह्मका अपने प्रतिपादक ग्रंथसें

प्रतिपादकतारूप संबंध है॥ औ जैसें पिता औ पुत्रका परस्परजन्य जनकता रूप संबंध है॥ तैसें ग्रंथ औ ब्रह्मका परस्पर प्रतिपाद्य प्रतिपादकतारूप संबंध है॥ यह सिद्ध भया ॥१५॥

॥ इति संबंध वर्णन ॥

---

५८. ॥ अथ विषयवर्णन ॥

॥ दोहा ॥

जीव ब्रह्मकी एकता। अहे विषय या ग्रंथ ॥ पंडितजन निर्णय कियो। वेद उदधिकूं मंथ ॥१६॥

टीकाः- जीव ब्रह्मकी जो एकता। सो या ग्रंथका विषय है॥ इहां जीव शब्दकरिके जीवपदके लक्ष्यार्थ कूटस्थ आत्मारूप जीवसाक्षीका ग्रहण है॥ यह वेदांत शास्त्रका विषय। पंडित जनोंनें वेदरूप समुद्रकूं मंथन करिके निर्णय किया है॥

इहां यह शंका समाधानरूप विशेष अर्थ है॥ शंकाः- ब्रह्म औ आत्माकी एकतारूप जो या ग्रंथका विषय कह्या। सो बनें नहीं। काहेतें सर्व शरीरनविषे जब आत्मा एक होवे। तब तिनकी एक ब्रह्मके साथि एकता संभवे॥

जातें सर्व शरीरनविषे आत्मा एक नहीं है। किंतु ना ना है। यातें ताकी एक ब्रह्मके साथि एकता बनै नहीं? समाधानः- सर्व शरीरनविषे आत्मा नाना है। इस अर्थविषे कोइ प्रमाण नहीं औ अज्ञानी जनोंकूं इंद्रियरूप प्रत्यक्ष प्रमाण करिके जो भेद भासता है। सो भेद प्रतीति देहकूं विषय करनेवाली है। आत्माकूं विषय करनेवाली नहीं॥ काहेतें आत्माकूं श्रुतिसें भिन्न प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणोंका अगोचर होनेतें॥ यातें सर्व शरीरविषे आत्मा नाना नहीं है। किंतु अनेक घटविषे अनुगत आकाशकी न्याई सर्व शरीरनविषे आत्मा एक है॥ यातें ताकी एक ब्रह्मके साथि एकता बनै है॥

शंकाः- "आत्मा नाना है। इस अर्थविषे कोइ प्रमाण नहीं" यह जो आप कहा। सो बनै नहीं॥ काहेतें आत्मा नाना है। इस अर्थविषे प्रत्यक्षादि सर्व प्रमाण इस रीतिसें सिद्ध होवे हैं:- जहां जहां अहं प्रत्ययका भेद है। तहां तहां आत्माका भेद है॥ जातें देह देहके प्रति "मैं ब्राह्मण हूं। मैं क्षत्रिय हूं।" इस रीतिसें अहं प्रत्ययका भेद प्रत्यक्ष भासमान है॥ औ सर्व देहविषे आत्माकी एकताके हुये "तूं। मैं। यह।" इत्यादि व्यवहा

का लोप होवैगा ॥ तातें आत्माके भेदविषै प्रत्य
क्ष प्रमाण है ॥ औ जातें आत्माका भेद न होवै
ता " तूं । मैं । यह । " इत्यादि व्यवहार नहीं सिद्ध हो
वैगा ॥ यातें व्यवहारसिद्धिकी भेदबिना अनुपप
त्ति (असंभव) करि आत्माके भेदविषै अर्थापत्ति
प्रमाणबी सिद्ध होय है ॥ औ आत्मा जो है । सो
शरीर शरीरकै प्रति भिन्न होवै है । काहेतें शरीररूप
व्यक्तिनकूं भिन्न होनेतें । गौ आदिक पशुनकी न्या
ई ॥ औ आत्मा जो है । सो शरीर शरीरके प्रति भि
न्न भिन्नही होवै है । काहेतें शरीरशरीरके प्रति
अहं प्रत्ययके भेदतें । घटादिककी न्याई ॥ इत्या-
दि अनुमान प्रमाणबी आत्माके भेदविषै सिद्ध
है । औ " अदिति । देव । गंधर्व । मनुष्य । पितर।
असुर । " ऐसी देव आदिकके भेदकी प्रतिपादक
श्रुति औ " देव । दानव । गंधर्व । यक्ष । राक्षस।
किन्नर । " इत्यादि पुराणवचनबी आत्माके भेद
विषै प्रमाण है ॥ औ हे सिद्धांती ! आप जब आ
त्माकी एकता अंगीकार करोगे । तब तुह्मारे वे-
दांत सिद्धांतविषै सुख दुःख आदिककी व्यवस्था
नहीं सिद्ध होवैगी । काहेतें एकके दुःखी अथ-
वा सुखी हुये सर्वबी दुःखी अथवा सुखी होवैं
गे ॥ औ आत्माकी एकताके हुये सर्वजन सर्वज्ञ

होवैंगे। तातें विधिनिषेधरूप शास्त्रनकी व्यर्थ-ता होवैगी॥ सर्वज्ञोंके प्रति विधिनिषेधके अभावतें॥ औ एकके बद्ध हुये सर्वकूं बंध होवैगा। वा एककूं मुक्त हुये सर्वकूं मोक्ष होवैगा॥ तातें आत्माकी अनेकता प्रमाणसिद्ध है?

समाधानः- हे प्रतिवादी! आत्माकी अनेकताविषे तैंनें प्रत्यक्षादि प्रमाण कहा। सो संभवै नहीं। काहेतें व्याप्तिके व्यभिचारकरि प्रत्यक्ष प्रमाणकी असिद्धितें॥ जहां जहां अहं प्रत्ययका भेद है। तहां तहां आत्माका भेद है। यह नियमरूप जो व्याप्ति है। सो व्यभिचारकूं पावती है॥ काहेतें मैं शिशु हूं। मैं कुमार हूं। मैं युवा हूं। मैं वृद्ध हूं। ऐसें शिशु भाव आदिक अवस्थाके भेदकरि अहं प्रत्ययका भेद है॥ औ कौमार अवस्थाविषे "मैं शिशु हूं।" ऐसी प्रतीति होवै नहीं॥ ऐसें युवा अवस्था विषे औ वृद्ध अवस्थाविषे अहं प्रत्ययका भेद है॥ तौबी शिशु आदिक अवस्थावाले अहंप्रत्ययके अर्थरूप आत्माके भेदके अदर्शनतें औ आत्माके भेद हुये बाल्यावस्थासें आरंभ करिके वृद्धावस्था पर्यंत किये कार्यके स्मरणके असंभवतें। आत्माके भेदविषे प्रत्यक्ष प्रमाण असिद्ध है॥ औ जैसें एकही देहविषे अवयवके भेदकूं आश्र

चकरिके मस्तक। हस्त। पाद। इत्यादि व्यवहार होवे है। तैसें सर्व शरीरन विषे आत्माकी एकताके हुये बी शरीरके भेदकूं आश्रय करिके "तूं। मैं। यह। इत्यादि व्यवहार सिद्ध होवे है॥ सो व्यवहार आत्माके भेदकी अपेक्षा करता नहीं॥ ऐसें व्यवहारकी सिद्धि हुये आत्माके भेदविना व्यवहारकी अनुपपत्ति (असंभव) नहीं है॥ यातें आत्माके भेद विषे अर्थापत्ति प्रमाणबी असिद्ध है॥ औ शरीररूप व्यक्तिके भेदतें अरु अहं प्रत्ययके भेदतें आत्माकाबी भेद है। यह अनुमान प्रमाण बी असिद्ध है॥ काहेतें स्थूल सूक्ष्म कारणरूप तीन देहोंके औ जाग्रत् देह औ स्वप्नदेहके भेदके होतेबी अहं प्रत्ययके अर्थरूप आत्माके भेदके अभावतें॥ औ पूर्व कही जो श्रुति। सो आत्माके उपाधिरूप देव आदिक देहके भेदकूं कहती है। आत्माके भेदकूं नहीं॥ काहेतें सर्व देहविषे चैतन्यकूं एकरूप होनेतें। आत्माके भेदका असंभव है॥ तातें शरीर भेदके प्रतिपादन परायण उक्त श्रुति है। आत्मभेदके प्रतिपादन परायण नहीं। यह सिद्ध भया॥ तैसें हीं उक्त पुराणवचन बी जानि लेना॥ औ हे प्रतिवादी! आत्माके अभेद हुये सुख दुःख आदिककी व्यवस्था नहीं सिद्ध होवेगी। यह जो तैनें

कह्याथा । सोबी बने नहीं ॥ काहेतें तिस सुख दुःखकी व्यवस्थाकूं प्रारब्धकर्मके आधीन होनेतें -औ एकही देहविषे कर्मभेदकरि सुख दुःख आदिककी विचित्रताके देखनेतें औ सुख दुःखकूं पुण्य पापके कार्य होनेकरि तिनके भेदतें औ चिदाभाससहित अंतःकरणरूप भोक्ताके भेदतें । सुख दुःख आदिककी व्यवस्था संभवे है ॥ औ हे प्रतिवादी ! तैंने जो कह्या । आत्माकी एकताके हुये सर्व जन सर्वज्ञ होवेंगे । यातें विधिनिषेधरूप शास्त्रनकी व्यर्थता होवैगी ? सोबी तेरा कथन असंगत है ॥ काहेतें । यद्यपि आत्माही सदा सर्वत्र जानता है । तथापि तिस तिस देहविषे तिस तिस बुद्धिकूं लेके आप जानता है । जातें देह भेदतें बुद्धिका भेद नियमित है । तातें देहदेहके प्रति ज्ञानका भेद होवे है । जिसकरि वस्तु जानिये है ॥ ऐसा जो बुद्धिवृत्तिरूप ज्ञान । सो परिच्छिन्न है ॥ यातें चक्षुकी न्याई स्वसंबंधी वस्तुमात्रकूं प्रकाशनेवाली बुद्धिवृत्तिका सर्व पदार्थोंके साथि संबंध बनता नहीं ॥ जो ताका सर्व पदार्थनसें संबंध होवे । तो सर्व जन सर्वज्ञ होवें ॥ जातें बुद्धिवृत्तिका सर्व पदार्थनसें संबंध नहीं है । तातें सर्व जनोंकी सर्वज्ञता असिद्ध है ॥ जैसें शब्दकी उत्पत्तिका हेतु जो व्यापक

आकाश है। ताकावी सर्वत्र भेरी औ ढोल आदिक सैं संयोग हुयेवी जहां दंड आदिकसैं भेरी आदिककी ताडना होवे है। तहांही शब्दकी उत्पत्ति होवे है। सर्वत्र नहीं॥ तैसैंहीं एक परिपूर्ण आत्माकावी जहां बुद्धिवृत्तिका पदार्थसैं संबंध होवे। तहांहीं ज्ञानउदय होवे है। अन्य ठिकाने नहीं॥ तातें बुद्धिवृत्तिनकूं अनेक होनेतें औ अव्यापक होनेतें। सर्व जनोंकी सर्वज्ञता नहीं संभवे है। यह सिद्ध भया॥ तातें अल्पज्ञजनोंके प्रति प्रवृत्ति निवृत्तिके हेतु होनेतें विधिनिषेधरूप शास्त्रनकी सार्थकताहिं होवे है॥ औ प्राणिनकूं सर्वज्ञताके अभावतें वेदांत श्रवणजन्य ज्ञानकरि प्रत्यक् अभिन्न परब्रह्मकूं स्वस्वरूपकरि जो जानता है। ताहीकूं मुक्ति होवे है। अन्यकूं नहीं॥ तातें आत्माकी एकताविषे उक्त दोषनका अवकाश नहीं है। यातें ब्रह्म औ आत्माकी एकतारूप जो या ग्रंथका विषय है। सो अनेक युक्ति औ प्रमाणकरि सिद्ध है इति॥१८॥

॥ इति विषय वर्णन ॥

---

१९. ॥ अथ प्रयोजन वर्णन ॥

॥ दोहा ॥

सर्व अनर्थ निवृत्ति अति। प्रापति

परमानंद॥ सोई प्रयोजन परम
तिहि। साधन बोध अमंद॥१७॥

टीकाः- अविद्या औ ताका कार्यरूप स्थूल सूक्ष्म प्रपंच औ ताका धर्म जन्ममरण आदिक संसार। सो सर्व दुःखके हेतु होनेतें **अनर्थ** कहिये हैं॥ तिनकी **अत्यंत निवृत्ति** औ **परमानंद**रूप जो ब्रह्म ताकी **प्राप्ति**। **सोई** इस ग्रंथका **परम प्रयोजन** कहिये परम फल है॥ औ **तिस** परम प्रयोजनका साक्षात् **साधन**रूप जो। **अमंद** कहिये दृढ। **बोध** कहिये ज्ञान। सो इस ग्रंथका अवांतर (बीचका) प्रयोजन कहिये है॥ जिस फलकी प्राप्तिकी पुरुषकूं इच्छा होवै। सो परम प्रयोजन है औ परम प्रयोजनका साधन होवै। सो अवांतर प्रयोजन है॥

इहां यह शंका हैः- सर्व अनर्थकी निवृत्ति औ परमानंदकी प्राप्तिरूप जो मोक्ष। सो ज्ञानसें जन्य है वा अजन्य है? जन्य कहोगे। तो मोक्षकूं अनित्यता होवैगी? औ अजन्य कहोगे। तो ज्ञानविनाहीं सर्व पुरुष मुक्त हुये चाहिये॥ यातें साधन सहित ज्ञानका संपादन व्यर्थ है? समाधानः- सर्व अनर्थरूप जो व्यावहारिक वा प्रातिभासिक सत्तावाला अज्ञान तत्कार्यरूप प्रपंच। ताकूं ब्रह्मविषै अध्यस्त होनेतें। ताका रज्जुविषै प्रातिभासिक

सत्ताकरि स्थित सर्पके व्यवहारिक सत्ता वा परमार्थ सत्ता करिके अत्यंत अभावकी न्याई परमार्थ सत्ता करिके ब्रह्मविषे अत्यंत अभाव है । सोई ताकी नित्यनिवृत्ति है ॥ यातें अनर्थकी निवृत्तिरूप जो मोक्षका प्रथम अंश । सो ज्ञानसें जन्य नहीं । किंतु " मैं ब्रह्म हूं " इस दृढ निश्चयरूप तत्वज्ञानके अनंतर । ब्रह्मविषे प्रपंचकी परमार्थ सत्तासें अत्यंत अभावमय जो पूर्वसिद्ध विषय (प्रकाश्य) रूप नित्य निवृत्ति है । ताका निश्चयरूप अंतःकरणकी वृत्तिमय विषयी (प्रकाशक) रूप कादाचित्क निवृत्ति होवे है । सो प्रपंचके परमार्थ सत्ताकरिके त्रिकाल अभाव निश्चयरूप वा व्यवहार सत्ता करिके स्वप्नके हस्ती आदिककी न्याई असत् होतेबी भासमानपनेरूप मिथ्या भावके निश्चयरूप निवृत्ति। ज्ञानसें जन्य है ॥ औ ब्रह्मप्राप्तिरूप जो मोक्षका द्वितीय अंश है । तासें पूर्व उक्त जो नित्य निवृत्ति । सो भिन्न नहीं ॥ यातें मोक्षकूं ज्ञानजन्यताके अभावतें अनित्यताकी प्राप्ति नहीं औ साधन सहित ज्ञानकी बी व्यर्थता नहीं ॥ इहां कछु विशेष है । सो विस्तारके भयसें लिख्या नहीं ॥ १७॥

॥ इति प्रयोजन वर्णन ॥

॥ दोहा ॥

अधिकारीसें आदि चव । कहि अनु
बंध विशेष ॥ भयो पूर्ण या ग्रंथको ।
वर प्रथम उपदेश ॥ १ ॥

इति श्रीबालबोधिनी टीकासहित बालबोधे अ
नुबंध चतुष्टय वर्णन नामक प्रथमोपदेशः समाप्तः ॥ १

अथ द्वितीयोपदेश प्रारंभः ॥ २ ॥

॥ गुरु शिष्य संवाद प्रसंगपूर्वक
सामान्य प्रश्नोत्तर ॥

१७ ॥ दोहा ॥

भव दव दाव सुतप्त कोउ । साधन-
चव संयुक्त ॥ जलबिन तलफत मी
नसम । भयो चहे भवमुक्त ॥ १ ॥
सद्गुरु शरणहि जायके । विधिवत् म
स्तक नाइ ॥ पूछे साधन मोक्षको ।
मन एकाग्र लगाइ ॥ २ ॥

टीकाः- भव जो संसार । तिसरूप दव जो बन । ता
का दाव जो अग्नि । जाकूं दावानल कहे हैं । तिसक-
रि तपायमान भया जो कोईक मनुष्य । सो पूर्वउक्त
च्यारीसाधनकरि संयुक्त हुया । जलविना व्याकुल

मीन (मत्स्य) की न्याई। भयजो संसार। तातैं मुक्त भया चाहता है। सो पुरुष सद्गुरुके पास शरण जायके पुरुषका प्रेरक प्रमाणरूप जो शास्त्र। तारूप विधिके अनुसार। गुरुके चरणोमें मस्तक नमाइके। मनकूं एकाग्र करिके। गुरुके प्रति मोक्षका साधन पूछता है॥ यह दोनूं दोहेका इकट्ठा अर्थ है॥"इहां विधिके अनुसार" यह जो वचन है। ताका यह अर्थ हैः- अधिकारी पुरुष। हस्तविषे भेटा लेके। गुरुके पास जायके। साष्टांग प्रणामकरिके "हे भगवन्! मुजकूं उपदेश करो" यह उच्चारण करिके। यहही मेरा शरण (आश्रय) है। इस भरोसे पूर्वक तामें गुरुभाव करे॥ यह गुरुके शरण जानेका विधिरूप शास्त्र है। याहीकूं उपसत्तिबी कहे हैं॥१॥२॥

१८ ॥ शिष्य उवाच ॥

॥ दोहा ॥

मोक्ष कोनसें होत है। कहिये कृपा निधान॥ मैं शरने तुमरे पर्यो। दुःखी दीन अजान॥ ३॥

टीकाः- हे कृपाके निधान कहिये भंडार श्री गुरो! मोक्ष कोन साधनसें होवे है? यह आप कहिये नाम कहो॥ जातें मैं संसाररूप वनके अग्निके ताप तैं दुःखी हूं औ अप्राप्त ब्रह्मरूप वस्तुकी प्राप्तिकी

इच्छातें दीन (लाचार) हूं औ अजान कहिये स्वतः कछु बी जानता नहीं। औ अन्य कोइ मतवादी-काबी संग किया नहीं। याहीतें तुह्मारे शरण पड्या हूं। तातें आप कृपा करिके गंगाजलकी शीतलताके तुल्य शांतिका उपाय कहो ॥ ३॥

१९ ॥ श्रीगुरुरुवाच ॥

॥ दोहा ॥

मोक्ष ज्ञानसें होत है। ज्ञान विचार हि होय ॥ याको आन उपाय नहि। सुन विचार अब सोय ॥ ४॥

टीका:- हे शिष्य। ब्रह्म औ आत्माकी एकताके ज्ञानसें मोक्ष होता है। सो ज्ञान आगे कहनेके विचारसेंहीं होवे है॥ ज्ञानविना इस मोक्षका औ विचारविना इस ज्ञानका अन्य उपाय नहीं है॥ यातें अब सोइ ज्ञान द्वारा मोक्षके हेतु विचारकूं तूं श्रवण कर॥ ४॥

२० ॥ विचार स्वरूप वर्णन॥

॥ दोहा ॥

मैं सो कोन जगत कहा। ईश्वर को न कहाय ॥ उत्तम याहि विचारतें। सद संसार न साय ॥ ५॥

टीका:- मैं सो कोन हूं औ जगत् कहा चीज है औ

ईश्वर कोन कहावे है॥ इन तीन वस्तुनका जो विचार है। सो उत्तम है॥ यातैं इस उत्तम विचारतैं सद क्रिये तत्काल जन्मादिक संसार नष्ट होवे है॥५॥

२१ ॥ शिष्य उवाच ॥

॥ दोहा ॥

भो भगवन् मैं कौन हूं। कहो श्रुति:
की रीति॥ नाम वर्ण आश्रम वपू मैं
यह मोहि प्रतीति॥६॥

टीका:- भो भगवन्। श्रुति जो वेद। ताकी रीतिसैं मैं कौन हूं यह कहो। ओ देवदत्त आदिक नाम ओ ब्राह्मण आदिक वर्ण ओ ब्रह्मचारी आदिक आश्रम। इन धर्मोंकरि युक्त जो वपु कहिये शरीर। सो मैं हूं। यह मेरेकूं प्रतीति होवे है॥७॥

२२ ॥ श्रीगुरुरुवाच॥

॥ दोहा ॥

नाम वर्ण आश्रम वपू। तिनतैं तूंहि
अतीत॥ सत चित आनंद आतमा।
मैं यह करो प्रतीत॥८॥

टीका:- हे शिष्य। नाम वर्ण ओ आश्रम। इनकरि युक्त जो शरीर। तिसतैं तूं निश्चयकरि अतीत कहिये न्यारा है॥ यातैं सत् चित् आनंदरूप आत्मा जो त्वंपदका लक्ष्य अर्थ। सो मैं हूं। यह तूं

प्रतीति कहिये निश्चयकर ॥८॥

॥ दोहा ॥

गुरु शिष्य संवाद कहि। प्रश्नोत्तर अविशेष ॥ भयो पूर्ण या ग्रंथको। वर दूसर उपदेश ॥२॥

इति श्रीबालबोधिनी टीकासहित बालबोधे गुरुशिष्यसंवाद प्रसंगपूर्वक सामान्य प्रश्नोत्तर वर्णन नामक द्वितीयोपदेशः समाप्तः ॥२॥

अथ तृतीयोपदेश प्रारंभः ॥३॥

२३ ॥ ईश्वर ओ सृष्टिविषयक प्रश्नोत्तर वर्णन ॥

॥ शिष्य उवाच ॥

॥ दोहा ॥

जग कर्ता ईश्वर कवन। करै स कि सविध सृष्टि॥ जग मिथ्या वा सत्य है। यह देहु मुहि दृष्टि ॥१॥

टीकाः- हे गुरो ! जगत्का कर्ता जो ईश्वर है। सो कौन है ? ओ सु कहिये सो ईश्वर। किसविध कहिये किस प्रकार सृष्टिकूं करता है। ओ दृश्यमान जो यह जगत् है। सो मिथ्या है वा सत्य है? यह

दृष्टि कहिये समज मुजकूं देहु । ये तीन प्रश्न शिष्यने किये ॥१॥

२८ ॥ श्रीगुरुरुवाच ॥

॥ दोहा ॥

माया शक्ति समेत जो । ब्रह्म सच्चिदानंद ॥ सो जगकर्ता ईश है । पूरन ताकूं वंद ॥२॥

टीकाः— पूर्वउक्त तीन प्रश्नोंका उत्तर गुरु कहैहैंः— हे शिष्य ! समष्टि अज्ञानरूप जो मायाशक्ति । जाकूं समष्टिरूप ईश्वरका कारण देह कहै हैं औ जाके अंशभूत व्यष्टि अज्ञानरूप जीवनके कारण देह हैं । ता मायाशक्तिसहित जो सच्चिदानंदरूप ब्रह्म है । सो जगतका कर्ता ईश्वर है ॥ सो ईश्वर सर्वत्र परिपूर्ण है ॥ इहां "परिपूर्ण" यह जो ईश्वरका विशेषण है । सो अन्य सर्वज्ञता आदिक धर्मोंका उपलक्षण (सूचक) है ॥ यातें सो ईश्वर परिपूर्ण । सर्वज्ञ । सर्व शक्तिमान् । समर्थ । स्वतंत्र । परोक्ष औ नित्य मुक्त है ॥ ताकूं वंद कहिये वंदन कर ॥ इहां जो वंदनरूप भक्ति कही । सो अन्य । श्रवण । कीर्तन आदिक अष्टविध भक्तिके बी यह पा अर्थ है ॥ यातें ईश्वर । श्रवण । कीर्तन । स्मरण पादसेवन । अर्चन (पूजन) । वंदन । दासभाव ।

सख्यभाव। आत्मनिवेदन (देहादि सर्व समर्पण) इस भेदतें जो नवविध भक्ति है। ताका विषय करनेकूं योग्य है ॥२॥

॥ शिष्य उवाच ॥

॥ दोहा ॥

देहादिक अब ईशके। कहो कवीजन राय॥ तिनतें न्यारो ब्रह्म मम। रूप स्फ जान्यो जाय ॥ ३॥

टीकाः- हे कविजनोंके राजा सद्गुरो! जीव भावके उपाधिरूप जो व्यष्टि देहादिक हैं। तिनतें न्यारा जो आत्मा है। सो मैंनें निश्चय किया॥ अब आप ईश्वरके देहादिक कहो? जिसकरि तिनतें न्यारा जो मेरा ब्रह्मरूप है। सो जान्या जाय कहिये जाननेमें आवे॥३॥

॥ श्रीगुरुरुवाच॥

॥ दोहा ॥

देहादिक जे ईशके। ताको स्रुनहु विचार॥ होवे जाके ज्ञानतें। ईश्वर को निर्धार ॥ ४॥

टीकाः- हे शिष्य! ईश्वरके जो देहादिक हैं। तिनका विचार मेरेतें श्रवण कर। जिसके ज्ञानतें ईश्वरका निरधार कहिये निर्णय होवे॥ ४॥

॥ दोहा ॥

जगकी उत्पत्ति थिती लय। तीन अ-
वस्था एह ॥ विराट् सूत्रातम अरु।
अव्याकृत ये देह ॥ ५ ॥
सत्वादिक गुन वस्तु है। माया देश
पिछानि ॥ वैश्वानर हीरण्यगर्भ।
ईश्वर ये अभिमानि ॥ ६ ॥

टीकाः— जगत्‌की उत्पत्ति स्थिति औ लय। ये ती-
न ईश्वरकी अवस्था हैं औ विराट् सूत्रात्मा अरु
अव्याकृत (माया) ये तीन ईश्वरके देह हैं ॥ ५ ॥
औ सत्वादिक तीन गुणरूप वस्तु है कहिये कुला-
लकूं मृत्तिकाकी न्याईं जगत् रचनाकी सामग्री है
औ कुलालकूं भूमिका आदिककी न्याईं मायारूप
ईश्वरका देश है। ऐसें जान ॥ औ वैश्वानर हिर-
ण्यगर्भ अरु ईश्वर। ये तीन ईश्वर भावके उपाधि
रूप जो तीन देह। तिनके क्रमतें अभिमानी हैं औ
"मैं एक हूं। सो बहुरूप होवों" इस ईक्षणसें लेके
जीवरूपसें व्यष्टि शरीरविषै प्रवेश पर्यंत जो सृष्टि
है। सो ईश्वरका कार्य है ॥ सर्वज्ञता आदिक ईश्व-
रके धर्म हैं ॥ यातें उक्त सामग्रीसहित माया औ
मायामें प्रतिबिंबरूप चिदाभास। तिससहित जो ब्र-
ह्मचेतन सो ईश्वरपदका वाच्य है औ इस सर्व

सामग्रीसहित माया औ चिदाभासका मिथ्यापने-
की बुद्धिसें त्याग करिके अवशेष रह्या जो ब्रह्मचेत
न सो ईश्वरपदका लक्ष्य अर्थ है औ सोई ईश्वरका
निजरूप है ॥६॥

२५ ॥ दोहा ॥

ईश्वरकूं इच्छा भई। जीव कर्म फल
काज॥ तब मायामें क्षोभ व्है। उप
ज्यो सर्व समाज॥७॥

टीकाः- ऐसें पूर्व दोहेमें ईश्वरका स्वरूप कहिके।
अब तत्कृत सृष्टिका प्रकार कहे हैं॥ जीवनके क
र्मफलके भोगअर्थ "मैं एक हूं सो बहुरूप होवों"
या प्रकारकी ईश्वरकूं इच्छा भई। तब ईश्वरभाव
का उपाधि जो माया। तामैं कार्यकी सन्मुखतारू
प क्षोभ होयके क्रमतें सर्व समाज कहिये सर्व प्रपं
चका समुदाय। उपज्यो कहिये उत्पन्न भयो॥७॥

२६ ॥ दोहा ॥

मायातें महत्तत्त्व हुई। उपजायो हं
कार॥ तातें तन्मात्रा भई। शब्दा-
दिक निर्धार॥८॥

टीकाः- सो प्रपंचकी उत्पत्तिका क्रम यह है:-
अव्यक्त। अक्षर। अज्ञान। प्रधान। शक्ति औ ती
न गुणोंकी साम्यावस्थारूप प्रकृति इत्यादि नामक

रि प्रसिद्ध जो माया है। ता मायातैं मायाविशिष्टचे तनरूप ईश्वरकी इच्छातैं। समष्टि बुद्धिरूप महत्त्व होयके। ता महत्तत्त्वने सात्विकी राजसी तामसी भेदतें त्रिविध अहंकारकूं उपजाया॥ तिनमेंसें राजसी अहंकारनें श्रोत्र। त्वचा चक्षु। जिह्वा। घ्राण। ये पांच ज्ञानइंद्रिय।औ वाक्। पाणि। पाद। उपस्थ। औ गुद। ये पांच कर्मेंद्रिय उत्पन्न भये। काहेतें इंद्रियनकूं विषय औ क्रियासें प्रवृत्तिरूप रजोगुणी स्वभाववाले होनेतें॥ औ सात्विकी अहंकारतें अंतःकरण शब्दका वाच्य मन औ दिशा। वायु। सूर्य। वरुण। अश्विनीकुमार। ये पांच ज्ञान इंद्रियनके देवता औ अग्नि। इंद्र। वामन। प्रजापति। यम। ये पांच कर्मइंद्रियनके देवता। औ मनका देवता चंद्रमा। ये सर्व उत्पन्न भये॥ अथवा मन। बुद्धि। चित्त औ अहंकार। इस भेदतें मन शब्दका वाच्य जो अंतःकरण। सो च्यारी प्रकारका है॥ तिनमें मनका देवता चंद्रमा। बुद्धिका देवता ब्रह्मा। चित्तका देवता वासुदेव। अहंकारका देवता रुद्र। ये सर्व सात्विकी अहंकारतें उत्पन्न भये। ऐसे जानना॥ काहेतें अंतःकरण औ देवनकूं प्रकाशरूप सात्विकी स्वभाववाले होनेतें॥ औ तामसी अहंकारतें शब्द। स्पर्श। रूप।

रस। औ गंध इस नामवाली पांच तन्मात्रा होती भई॥ याहीकूं सूक्ष्म पंचभूत औ अपंचीकृत पंचभूतबी कहे हैं॥ इहां पर्यंत जो सृष्टि भई। ता सर्वकूं एकत्र करिके सूत्रात्मा औ हिरण्यगर्भ कहिये है॥ सोई ईश्वरका समष्टिरूप लिंगदेह है। औ ताहीके अंतर्गत सप्तदश तत्वरूप जीवनके व्यष्टिलिंग देह हैं॥ ८॥

२७ ॥ दोहा॥

तिनको पंचीकरण है। भये पंचही भूत॥ स्थूल देह तातें भये। च्यारि भांतिके भूत॥ ९॥

टीकाः- तिन पांच तन्मात्रारूप सूक्ष्म भूतनका पंचीकरण होयके। पंचीकृत पंचमहाभूत भये॥ सो पंचीकरण यह हैः- आकाशादिक सूक्ष्म पंचभूतनमैंसें एकएकके दो दो भाग किये। सो भये दश। तिनमैंसें पांच अर्ध अर्ध भाग ज्यूंके त्यूं रहने दिये औ पांच भागनमैंसें एकएकके च्यारी च्यारी भाग किये। सो च्यारी च्यारी भाग। आप आपके स्थापन किये अर्ध अर्ध भागकूं छोडिके अन्य भूतोंके च्यारी अर्ध अर्ध भागनविषे मिलाय दिये। यातें एकएक भूत। पांच पांच प्रकारका होवै है॥ जैसें गोधूम। तंदुल। मुग्ध (मुंग)। उडद। चने।

एक एक शेरके परिमाणवाले इन पांचो अन्नका-
अर्ध अर्ध भाग कियेसें। दश अर्धशेर होवै हैं ॥
तिनमेंसें पांच अर्धशेर। ज्यूंके त्यूं रहने दिये।औ
पांचमेंसें च्यारी च्यारी भाग किये। सो च्यारी भाग
आप आपके अर्धशेरकूं छोडिके दूसरे अन्नोकेअ
र्धशेरनविषे मिलाय दिये। तासें एक एक अन्न
पांच पांच प्रकारका होवै है ॥ तैसें एक एक भूत
बी उक्त रीतिसें पांच पांच प्रकारका होवै है ॥ इस
रीतिसें सूक्ष्म पंचभूतनका ईश्वरकी इच्छासें जो
परस्पर मिलाप भया है। ताकूं शास्त्रविषे पंचीक
रण कहे हैं॥ औ जिन भूतनका पंचीकरण भया
है। तिन भूतनकूं पंचीकृत भूत कहे हैं। औ ताही-
कूं स्थूल भूत बी कहे हैं॥ तिन पंचीकृत पंचभूतन-
के परस्परके मिलापद्वारा ब्रह्मांड होवै है ॥ ता ब्र
ह्मांडके भीतर जीवनके निवासअर्थ। पृथ्वीके नी
चे। अतल। वितल। सुतल। तलातल। रसातल।
महातल औ पाताल। ये सप्तलोक हैं औ पृथ्वी
सें लेके भूः। भुवः। स्वः। महः। जन। तप।
सत्य (ब्रह्मलोक)। ये सप्तलोक हैं॥ सर्व मिलि-
के चतुर्दश लोक भये॥ तिनमें देवता। मनुष्य आ
दिकू जरायुज शरीर। औ पक्षी आदिकू अंडज श-
रीर औ वृक्ष आदिकू उद्भिज्ज शरीर औ यूका आ-

दिक स्वेदज शरीर। ये च्यारी खानिरूप च्यारी भांतिके शरीररूप भोगायतन (भोगके स्थान) उत्पन्न भये॥ तिन तिन लोकनविषे तिस तिस शरीरके उपयोगी भोगके साधन अन्न आदिक भोग्य पदार्थ उत्पन्न भये॥

२८ यद्यपि तैत्तरीय उपनिषद्विषे "ब्रह्मरूप-आत्मातें आकाश होता भया। आकाशतें वायु होता भया। औ वायुतें तेज होता भया। औ तेजतें जल होते भये औ जलतें पृथ्वी होती भई औ पृथ्वीविषे ओषधियां (अन्नके वृक्ष) होती भई औ ओषधिनतें अन्न होता भया औ अन्नतें वीर्यद्वारा पुरुष होता भया" इत्यादि वाक्यतें प्रथम-आकाश आदिकके क्रमकरि पंचभूत उपजते हैं॥ तिन अपंचीकृत भूतनतें प्राण आदिकके क्रमकरि समष्टिरूप लिंग शरीर होवै है। पीछे पंचीकृत हुये तिन भूतनतें ब्रह्मांड होवै है॥ सो ब्रह्मांड विराट् शरीर कहिये है॥ तिस ब्रह्मांडविषे ताका अभिमानी वैराज पुरुष स्थित होवै है। सो वैश्वानर नामसें प्रसिद्ध है औ सोई क्षीरसागरशायी श्रीनारायण नामक अंतर्यामीका लीलाविग्रह है। तिसके नाभिकमलविषे वैराज पुरुषका भोगविग्रहरूप चारी मुखवाला ब्रह्मा होवै है। तिसतें समयके

अनुसार अन्य जीवनका आविर्भाव होवै है। यह प्रक्रिया है॥ तातें पूर्व महत्तत्वके क्रमतें उक्त सृष्टि विरुद्ध है। तथापि इहां महत्तत्त्व आदिकके क्रमकरि जो सृष्टि कही है। सो ज्ञानशक्तिवाले. महत्तत्त्वके-सदृश चित्तके आविर्भावपूर्वक अहंकार होवै है। तिस अहंकारके उत्थानतें पंचभूत औ इंद्रिय आदिकनका कथन प्रतीतिरूप व्यवहार होवै है॥ इस अनुभवके अनुसार कही है॥ औ विचारदृष्टिसें देखिये तो। वेदविषे कहीं अनुक्रमसें सृष्टि कही है। कहीं क्रमसें सृष्टि कही है। कहीं तेज आदिक तीन भूतनसें सृष्टि कही है। कहीं आकाश आदिक पंचभूतनसें सृष्टि कही है। कहीं महत्तत्त्वादिकके क्रमसें सृष्टि कही है॥ इन सर्व वाक्योंका एक अर्थ करनेमें विरोध प्रतीत होवै है॥ यातें इन सर्व वाक्योंका जिसि किसि प्रकार मुमुक्षुकूं सृष्टिके आरोपद्वारा। तिसका अपवाद करिके जगतके मिथ्यात्व निश्चय पूर्वक अद्वैत तत्त्वके उपदेशविषे तात्पर्य है॥ औ प्रपंच जो सत्य होता तो सर्व वेदके वाक्य ताका एकही रीतिसें निरूपण करते। तैसें निरूपण किया नहीं। यातें प्रपंच मिथ्या है॥ यह सर्व वेदवाक्योंका तात्पर्य निश्चित होवै है॥ यह अर्थ प्रसंगसें निरूपण किया

है॥ इहां पंचीकृत भूतनसैं लेके स्थूल देह पर्यंत जो प्रपंच है। सो सर्व मिलिके विराट् कहिये है। सो ईश्वरका समष्टिरूप स्थूल देह है॥ ९॥

२९ ॥ दोहा ॥

इसविध सृष्टी ईशनें। सृजी द्विवि-
ध सो जान॥ समष्टि व्यष्टी ईश अ
रु। जीव उपाधी मान॥१०॥

– इसविध कहिये इस कथन किये प्रकारसैं। ईश्वररूप कर्त्तानें। सृष्टि कहिये विश्वरचना। सृजि कहिये रची है। सो सृष्टि समष्टि औ व्यष्टि भेदतें द्विविध कहिये दो प्रकारकी है। ऐसैं जान॥ वनकी न्याईं। वा जलाशय (तलाव) की न्याईं। वा गोत्व आदिक जातिकी न्याईं। जो अनेक पदार्थनविषे एक बुद्धिकी विषयता है। सो समष्टि कहिये है॥ औ एकएक वृक्षकी न्याईं। वा एक एक जलबिंदुकी न्याईं। वा एक एक व्यक्ति (गो आदिक मूर्ति) की न्याईं। जो अनेक बुद्धिनकी विषयता (विषय होना) है। सो व्यष्टि कहिये है। तिनमें समष्टि कारणदेह औ समष्टि सूक्ष्मदेह औ समष्टि स्थूल देह। ईश्वरकी उपाधि है॥ औ व्यष्टिकारण देह। व्यष्टि सूक्ष्मदेह। औ व्यष्टि स्थूलदेह। जीवनकी उपाधि हैं॥ इहां विशेषणका ही व्यावर्तकप-

नैकारि उपाधिके साहश्य होनेतैं । उपाधि शब्दसैं क
थन किया है ॥ अपने आश्रयरूप वस्तुके स्वरू
पविषै जाका प्रवेश होवे। ऐसा जो व्यावर्तक वस्तु
सो विशेषण कहिये है ॥ जैसें घटका नीलरंग वि
शेषण है औ जैसें केवल भाजुविषे तोलेहुये सु
वर्णका जतु (लाख) विशेषण है औ जैसें निर्ध
नव्यापारी पुरुषका भागीदार अन्य धनाढ्य पुरु
ष विशेषण है ॥ काहेतें ये तीन जातें अपने आ
श्रयरूप वस्तुके स्वरूपविषै प्रविष्ट होयके व्या-
वर्तक कहिये अन्योंसें भिन्न करिके जनावनेवाले
हैं। यातें वे विशेषण कहिये हैं ॥ घटका नीलरंग
घटके स्वरूपविषै मिलिके नील घटका अन्य पी
त आदिक घटनतें भिन्नकरिकें जनावनेहारा है।
यातें विशेषण है ॥ औ जतु जो है सो जलसें बा
हिर तोलेहुये भूषणके स्वरूपविषै बीजसें मिलि-
केहीं अन्य जतुरहित पीन भूषणोतें ताका व्या-
वर्तक है। यातें सो भूषणका विशेषण है ॥ औ ध
नवान् भागीदार पुरुषबी। व्यापारके विषय वस्तु
विषै अभिमानद्वारा प्रवेश पायके अन्य अभा-
गी दारोंतें अपने भागीदार निर्धन पुरुषका व्या
वर्तक है। यातें सो ताका विशेषण है ॥
औ अपने आश्रयके स्वरूपविषै जाका प्रवे-

श होवै नहीं। ऐसा जो व्यावर्तक वस्तु। सो उपाधि कहिये है॥ जैसें घट जो है। सो घटाकाशका उपाधि है औ जलविषे त्राजूसें तोलेहुये भूषणका जंतु (जोगिनी) उपाधि है औ व्यापारी पुरुषनें कार्यअर्थ रखाहुवा जो किंकर। सो ताका उपाधि है॥ काहेतें ये तीन जातें अपनें आश्रयके स्वरूपविषे प्रवेशकूं न पायके व्यावर्तक हैं यातें ये उपाधि हैं॥ घट जो है सो घट अवच्छिन्न आकाशमात्रविषे घटाकाश व्यवहारके देखनेतें घटाकाशके स्वरूपविषे प्रवेशकूं न पायके घटाकाशका मठाकाश आदिकतें व्यावर्तक है। यातें सो ताका उपाधि है॥ औ जलविषे त्राजूसें तोलेहुये भूषणविषै स्थित जो जंतु है। सो बोजसें भूषणविषे प्रवेशकूं न पायके ताका अन्य जंतुरहित भूषणोतें व्यावर्तक है। यातें ताका उपाधि है॥ औ किंकर जो है। सो अभिमानद्वारा तिस व्यापारीके स्वरूपविषे प्रवेशकूं न पायके। अपने अनाश्रयभूत पुरुषनतें तिस आश्रयभूत व्यापारीका व्यावर्तक है। यातें उपाधि है॥ विशेषणका आश्रयरूप जो विशेषणवाला वस्तु है। सो विशिष्ट कहिये है॥औ उपाधिका आश्रयरूप जो उपाधिवाला वस्तु है। सो उपहित कहिये है॥

३४ अविवेकीकी दृष्टिसें सर्वज्ञता आदिक धर्म सहित समष्टि स्थूल सूक्ष्म औ कारण प्रपंचका चेतनके स्वरूपविषे तादात्म्य संबंधरूप प्रवेश प्रतीत होवै है। औ सो प्रपंच। कूटस्थ चेतन औ जीवचेतन आदिकनें तिस ईश्वरभावकरि प्रतीत भये चेतनका व्यावर्तक है॥ यातें तिस प्रपंचसें कल्पित तादात्म्य संबंधवाला औ क्रमतें वैश्वानर। हिरण्यगर्भ औ अंतर्यामी इन नामोंकरि प्रसिद्ध ब्रह्मरूप जो ईश्वर चेतन है। ताका उक्त त्रिविध समष्टि प्रपंच। विशेषण है॥

औ विवेकीकी दृष्टिसें समष्टि स्थूल सूक्ष्म-औ कारण प्रपंचका चेतनके स्वरूपविषे तादात्म्य-संबंधरूप प्रवेश प्रतीत होवै नहीं। किंतु असंगताहीं प्रतीत होवै है॥ औ सो प्रपंच। ईश्वरचेतन औ जीवचेतन आदिकनें तिस उक्त प्रपंचरूप उपाधिके आश्रयभूत चेतनमात्रका व्यावर्तक है॥ यातें सो प्रपंच। उक्त प्रपंचके अधिष्ठानरूप ईश्वरसाक्षी ब्रह्मचेतनका उपाधि है॥

३५ तैसें अविवेकीकी दृष्टिसें कर्तापना भोक्तापना सुखीपना दुःखीपना जीवपना संसारीपना अल्पज्ञपना इत्यादिक धर्मसहित व्यष्टि स्थूल सूक्ष्म औ कारण प्रपंचका अपने अधिष्ठान कूटस्थ

चेतनके स्वरूपविषै कल्पित तादात्म्य संबंधरूप प्रवे
श प्रतीत होवै है॥ औ सो प्रपंच। ब्रह्मचेतन औ
ईश्वरचेतन आदिकतैं तिस अपने आश्रयभूत चे
तनका व्यावर्तक है। यातैं विश्व तैजस औ प्राज्ञ
इन नामोंकरि प्रसिद्ध जो स्थूल आदिक व्यष्टि प्रपं
चसैं तादात्म्यवाला कूटस्थ चेतनरूप संसारी जी
व है। ताका उक्त त्रिविध व्यष्टि प्रपंच विशेषण क
हिये है॥ औ विवेकीकी दृष्टिसैं धर्मसहित व्यष्टि
स्थूल सूक्ष्म कारण प्रपंचका। अधिष्ठान कूटस्थ
चेतनविषै तादात्म्य संबंधरूप प्रवेश प्रतीत होवै
नहीं। किंतु असंगताही प्रतीत होवै है॥ औ सो-
प्रपंच। ईश्वरचेतन आदिकतैं तिस उक्त त्रिविध
व्यष्टि प्रपंचके अधिष्ठान जीवसाक्षी कूटस्थ चे
तनका व्यावर्तक (भिन्न करिके जनावनेवाला) है।
यातैं सो ता जीवसाक्षीका उपाधि कहिये है॥

३२ एकही प्रपंच। चेतनविषै ईश्वरभाव औ जी
वभावका विशेषण है औ अधिष्ठानरूप ब्रह्मभा
व औ साक्षीभावका उपाधि है॥ जैसें एकही जतु
जलसें बाहिर तोलनेके (तुलाविषै डालनेके) सम-
यमैं भारकी अधिकताके देखनेतैं औ पीन भूष-
णोतैं ताका व्यावर्तक होनेतैं विशेषण है औ जल
विषै तोलनेके समयमैं भारकी अधिकताके अभा-

पतें औ अन्यौतें व्यावर्तक होनेतें उपाधि है ॥ भूष णविषै भारकी अधिकता औ न्यूनता हीं ताका प्र वेश औ अप्रवेश है ॥ वा जैसें एकही दंड गमन कालविषै पुरुषकी न्याई आपबी गमन क्रियावा ला होनेतें औ अन्य दंडरहित पुरुषनतें ताका व्या वर्तक होनेतें दंडी पुरुषका विशेषण है। औ भो जनकालविषै पुरुषकी न्याई आप भोजन क्रिया- सें रहित होनेतें औ अन्य अदंडी पुरुषनतें ता दं डी पुरुषका व्यावर्तक (दंडीनामकरि भिन्नजनाव नेवाला) होनेतें उपाधि है ॥ इहां अपने आश्रय की क्रियाकरि युक्तता औ अयुक्तताहीं क्रमतें ता का प्रवेश औ अप्रवेश है ॥

तैसें एकही प्रपंच । अविवेकीकी दृष्टिसें भ्र- मरूप प्रपंच औ चेतनके तादात्म्य संबंधकरि प्रती यमान ईश्वरभाव औ जीवभावका विशेषण क- हिये है। औ विवेकीकी दृष्टिसें प्रतीयमान अधि ष्ठानरूप ब्रह्मभाव औ साक्षीभावका उपाधि है इति ॥ ५० ॥

३३ अब "जग मिथ्या वा सत्य है" इस तृतीय दोहेमें उक्त तृतीय प्रश्नका उत्तर कहे हैं:-

॥ दोहा ॥

सुपन जगत शुक्ती रजत । रज्जु सर्प

सम सोय ॥ मिथ्या जगत पिछा-
नहू । सत्य कदा नहि होय ॥ ११ ॥

टीका :- सो पूर्वउक्त जगत् स्वप्न प्रपंच औ शुक्ति रजत औ रज्जु सर्पके समान मिथ्या होनेतें कहिये बाधयोग्य स्वरूपवान् होनेतें। सत् असत्सें विलक्षण अनिर्वचनीय है। ऐसें जानो ॥ औ सत्य कहिये त्रिकाल अबाध्य कदाचित् सिद्ध होवै नहीं ॥

याका यह भाव है:- पूर्व दृष्ट मिथ्या किंवा-सत्य जो अध्यासका सजातीय वस्तुताके ज्ञानसें जन्य संस्कार। तिसकरि सहित पुरुषरूप द्रष्टाकी दृष्टिसें निद्रादोषकरि वा किसी मंद अंधकार आदिक अन्य प्रतिबंधकरि जाग्रत्के पदार्थरूप वा शुक्तिरूप वा रज्जुरूप अधिष्ठानकी विशेषरूप-सें अप्रतीति औ सामान्य इदंरूपसें प्रतीतिकरि ॥ निद्राकालमें शरीरके भीतर स्थित वा नेत्रादि-द्वारा वृत्तिके बाहिर गमनकरि बाहिर शुक्ति वा रज्जुरूप देशविषै स्थित अंतःकरण उपहित साक्षी चैतन्यके आश्रित । मूल अविद्याकी कार्यरूप । तूल अविद्याके तमोगुण अंशका परिणाम स्वप्नप्रपंच औ कल्पित रजत औ कल्पित सर्प। सत् असत्सें विलक्षण । अनिर्वचनीय। उपजे है ॥ ताही-

निमित्तसैं। तिसीहीं समयमैं। तिसीहीं अविद्या के सत्वगुणका परिणाम। तिनका ज्ञानबी। सत् असत्सें विलक्षण अनिर्वचनीयहीं उपजे है ॥ औ क्रमतें जाग्रत् प्रपंच औ शुक्ति औ रज्जुके ज्ञानकरि वृत्तिद्वारा तिनके साथि एकरूप हुये साक्षीरूप अधिष्ठानके ज्ञानकरि एकहीं कालवि षे दोनूंकी निवृत्ति होवे है ॥ इस रीतिसें अनिर्व चनीय (अध्यासरूप) स्वप्न प्रपंच आदिकका प्रतीति औ कथनरूप जो व्यवहार। सो सिद्धां तविषे संमत अनिर्वचनीय ख्याति कहिये है ॥

जैसें उक्त दृष्टांत है। तैसें वर्तमान औ भा वीकालविषे प्रतीयमान मिथ्या अहंकारादि प्रपं चतैं पूर्व पूर्व अनुभव किये तिनके सजातीय मि थ्या अहंकारादि प्रपंचके ज्ञानकरिके जन्य जो सं स्कार हैं। तिसकरि सहित सकल अविवेकी जीव रूप द्रष्टाकी दृष्टिसें। पूर्वकालके सर्व जीवनके अ दृष्ट औ अविवेक आदिक दोषरूप निमित्तकरि- "मैं चेतनरूप हूं वा आनंदरूप हूं वा नित्य मुक्त हूं वा परिपूर्ण हूं" इस रीतिसें चेतन आनंद नि त्य मुक्तता आदिक अधिष्ठानके विशेषरूपकी अ प्रतीति ॥ औ "मैं हूं वा यह है" इस रीतिसें अधि ष्ठानके सामान्य सत् रूपकी प्रतीतिकरि। रज्जु औ भ-

ह्म। ताके आश्रित होनेतें स्वाश्रय औ स्व जो ब्रह्म ताकूं आवरण करनेतें स्वविषय औ मैं अज्ञानी हूं ऐसें अभिमान करनेतें। जीवके आश्रित जो-मूल अविद्या है। जाकूं मूल प्रकृति औ महामाया कहते हैं॥ तिसविषै क्षोभ होयके। ता अविद्याके तमोगुण अंशका परिणाम। सत् असत्सें विलक्षण अनिर्वचनीय समष्टि व्यष्टिरूप स्थूल सूक्ष्म प्रपंच। क्रमतें वा क्रमविना उपजे है॥ औ ताही निमित्तसें कालांतरविषै वा तिसीहीं काल-में। उक्त अविद्याके सत्वगुणका परिमाण अंतःकरणकी वृत्तिरूप वा अविद्याकी वृत्तिरूप तिसका ज्ञान उपजे है॥ ऐसें प्रपंच अरु ताका ज्ञान। अविद्याकरि कल्पित है। यातें कार्य अध्याससिद्ध होवे है॥ औ अपने प्रकाशअर्थ अन्यप्रकाशकी अपेक्षारहित होनेतें स्वपरके निर्वाहक दीपककी न्याई। औ सांख्यादि अभिमत स्वपरके निर्वाहक स्वप्रकाश आत्माकी न्याई। औ नैयायिक अभि-मत स्वपरके निर्वाहक घटपटके अन्योन्य अभाव रूप भेदके भेदक आपहीं भेदकी न्याई। स्वपरकी निर्वाहक होनेतें। उक्तकार्य अध्यासकी कारण-रूप जो मूल अविद्या। सो शुद्ध चेतनरूप अधिष्ठानविषै आपकी कल्पना (अध्यास) की कारण आ-

यहीं है ॥ औ सो सामान्य चेतन । काष्टविषे स्थित सामान्य अग्निकी न्याई औ सुषुप्तिगत अविद्याके आश्रय आप चेतनकी न्याई । ताका विरोधि नहीं । किंतु सत्तास्फूर्तिकरिके ताका साधक है ॥ यातें कारण अध्यासबी बने है ॥

उक्त कार्य अध्यास । अर्थाध्यास औ ज्ञानाध्यास इस भेदतें दोभांतिका है ॥ सर्प आदिकविषयकी जो भ्रांति (अनकुयेका होना)। सो अर्थाध्यास कहिये है औ उक्त सर्पादि विषयके ज्ञानकी जो भ्रांति । सो ज्ञानाध्यास कहिये है ॥ तिनमें अर्थाध्यासके अनेक भेद हैं। वे श्री विचारचंद्रोदयकी षष्टकलाविषे तथा श्री पंचदशीके सप्तम तृप्तिदीपकी टिप्पणविषे लिखे हैं। तहां देख लेना ॥

इहां यह विशेष है:- अज्ञान । अहंकार (अंतःकरण)। ताके धर्म । इंद्रिय। इंद्रियके धर्म। देह। देहके धर्म इत्यादि अनात्मा औ तिनके प्रकाशक आत्माका जो तादात्म्य सो अध्यासका स्वरूप है ॥ औ अधिष्ठानका विशेषरूपसें अज्ञान अध्यासका उपादान कारण है ॥ औ सजातिय वस्तुके ज्ञानसें जन्य संस्कार । लोभ भय आदिक प्रमाता (अंतःकरण) का दोष। पित्त कामल आदिक प्रमाण (नेत्रादि इंद्रिय) का दोष ।

त्रिवलयाकारता अरु चाकचिक्य आदिक सादृश्य रूप प्रमेय (प्रमाणसें जानने योग्य अधिष्ठान) का दोष औ अधिष्ठानका इदंता अरु सत्तामय सामान्यरूपसें ज्ञान ये पांच अध्यासके निमित्त कारण हैं। औ पुत्रादिविषे आत्मभ्रांति। अध्यासका अवधि है॥ औ जन्म मरण आदिक संसार। अध्यासका फल है॥

औ प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मरूप अधिष्ठानके ज्ञानतें कारणसहित प्रपंच औ ताके ज्ञानकी मिथ्यात्व निश्चय वा त्रिकाल अभाव निश्चयरूप-निवृत्ति (बाध) होवे है॥ जैसें दश पुरुषनकूं रज्जुरूप अधिष्ठानकी अविद्यासें दंड। सर्प। माला। वृक्षकी जड। जलधारा। औ पृथ्वीकी दरार इत्यादि विलक्षण भ्रांति होवे है वा सर्वकूं एक सर्पकीहीं भ्रांति होवे है॥ परंतु जिसकूं रज्जुरूप अधिष्ठानका ज्ञान होवे। तिसकी दृष्टिसें स्वसाक्षी आश्रित अविद्या अंशके तिरस्कारतें वा नाशतें भ्रांतिकी निवृत्ति होवे है॥ औ अधिष्ठानके ज्ञानसें रहित अन्य पुरुषनकी दृष्टिसें अविद्या-सहित भ्रांति ज्यूंकी त्यूं स्थित होवे है॥ तैसें सर्व पुरुषनकूं। अधिष्ठान ब्रह्मकी अविद्यासें। देव मनुष्यादि भेदतें परस्पर विलक्षण वा समान हीं-

अध्यस्त प्रपंच औ ताका ज्ञान होवै है॥ परंतु जा कूं प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मरूप अधिष्ठानका अपरोक्ष ज्ञान होवै है। ताकी दृष्टिसैं कारणसहित प्रपंच औ ताके ज्ञानकी निवृत्ति होवै है। औ अधिष्ठानके ज्ञानसैं रहित अन्य पुरुषनकी दृष्टिसैं कारणसहित प्रपंच औ ताका ज्ञान। ज्यूंका त्यूं अनादिरूप स्थित होवै है। इति ॥११॥

२८ ॥ शिष्य उवाच ॥

॥ दोहा ॥

भो भगवन् मिथ्या जगत। मिटे न
विना उपाय॥ याहि निवृत्ति उपाय
सुहि। कहो नयों तुज पाय॥१२॥

टीकाः- शिष्य कहे हैः- भो भगवन्! कहिये हे गुरो! जैसैं भयानक स्वप्न प्रतीत होवै है। सो यद्यपि मिथ्या है। तौभी ताकी निवृत्तिअर्थ। पादप्रक्षालन औ गजेंद्रमोक्षपठन आदिक उपायसैं ताकी निवृत्ति होवै है। विना उपाय नहीं॥ तैसैं यह प्रतीयमान जगत्। यद्यपि अध्यासरूप होनेतैं मिथ्या है। तथापि किसी उपायविना सो मिटे नहीं। किंतु किसी ज्ञान वा भक्ति वा कर्म आदिक उपायसैं हीं मिटेगा॥ यातैं इसकी निवृत्तिका उपाय मुजकूं कृपाकरिके-

कहो। मैं तुमारे पाय कहिये चरणोके प्रति न
मन करता हूं ॥१२॥

३५ ॥ द्विविध निवृत्ति लक्षण ॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥

॥ दोहा ॥

कारणमें कारज विलय। सोइ नि-
वृत्ति असार॥ कारन सह कारज वि
लय। सोइ निवृत्ती सार॥१३॥

टीकाः- अब श्रीगुरु जगत्की अत्यंत निवृत्तिका-
उपाय कहनेकूं। प्रथम निवृत्तिके भेदकूं कहे हैं:-
निवृत्ति दो प्रकारकी है:- एक कारणविषे कार्य
का लयरूप निवृत्ति है॥ जैसें सुषुप्ति मूर्च्छा मर
ण औ प्रलय अवस्थाविषे जगत्का अपने का
रण अज्ञानविषे लय होवे है॥ औ जैसें भंग
अवस्थाविषे घटका मृत्तिकारूप अवशेषक-
रि मृत्तिकाविषे लय होवे है॥ औ दूसरी कार-
णसहित कार्यका लयरूप निवृत्ति है। जैसें मो
क्षदशाविषे अज्ञानरूप कारणसहित जगत्का
लय होवे है॥ औ जैसें दग्धपटका अपने कारण तं
तुसहित लय होवे है॥ ऐसें दो प्रकारकी निवृत्ति
कही॥ तिनमें कारणविषे कार्यका लयरूप
जो प्रथम निवृत्ति है। सो असार कहिये मोक्ष

विषे अनुपयोगी होनेतें अश्रेष्ठ है॥ औ कारण सहित कार्यका लयरूप जो द्वितीय निवृत्ति है। सोई सार कहिये मोक्षविषे उपयोगी होनेतें श्रेष्ठ है॥ यातें जगत्‌की तैसीही (द्वितीय) निवृत्ति मुमुक्षुकूं ज्ञानसैं संपादन करने योग्य है॥१३॥

३६ ॥जगत् निवृत्ति उपाय वर्णन ॥

॥दोहा॥

जग कारन अज्ञान है। कारज जग
जड जान॥ ताहि निवृत्ति ज्ञानतें।
होत उपाय न आन॥१४॥

टीकाः- जगत्‌का कारण अज्ञान है औ ताका कार्य जड जगत् है। ऐसें जान॥ इहां "जड" शब्द जो है। सो चेतनरूप चिदाभासका बी सूचक है॥ यातें जड चेतनरूप जो चराचर जगत् है। सो अज्ञानका कार्य है॥ तिन दोनूंकी पूर्वउक्त अत्यंत निवृत्ति ज्ञानतें होवै है। इसकी निवृत्ति अर्थ अन्य उपाय नहीं है॥ काहेतें "ज्ञानविना मुक्ति नहीं है" "तिसीहींकूं जानिके मृत्युकूं लंघते हैं। मोक्षके प्रति जाने अर्थ अन्यमार्ग नहीं है" इत्यादिक अनेक श्रुतिनके सद्भावतें॥१४॥

३७ ॥ ज्ञानके विषय ब्रह्मात्माकी एकताका कथन ॥

अब श्रीगुरु ज्ञानका स्वरूप कहनेकूं। प्रथम ज्ञानके विषय ब्रह्मात्माकी एकताका कथन करै हैं:-

॥ दोहा ॥

देहादिक प्रपंचतें। न्यारो आतम रूप॥ संग विकार विहीन सो। पूरन ब्रह्म सरूप ॥१५॥

टीका:-स्थूल देह औ ताके स्थूल। कृश। गौर। श्याम। वर्ण। आश्रम। आदिक धर्म औ ताकी जागृत् औ बाल्य आदिक अवस्था। इनसें आदि लेके जो और इंद्रिय। प्राण। मन। बुद्धि। अज्ञान औ तिनके धर्म औ अवस्थारूप जो व्यष्टिप्रपंच है॥ औ विराट् आदिक शरीर औ सर्वज्ञता औ सृष्टिकारकता आदिक तिनके धर्म औ उत्पत्ति आदिक तिनकी अवस्था। इत्यादिक समष्टि प्रपंच है। यह जो देहादिक प्रपंच तिसतें न्यारो-कहिये विवेक दृष्टिसें भिन्न जो अहंप्रत्यय (अहं शब्द औ अहंवृत्ति) का विषय आत्मस्वरूप है। सो संग कहिये संयोगादिरूप वा सजातीय विजातीय स्वगतरूप संबंध औ विकार कहि-

ये जन्म। अस्तिता (पूर्व अभाव औ पीछे भाव)। वृद्धि। विपरिणाम। अपक्षय। नाश। ये षट् विकार। वा चलनरूप क्रिया॥ इनसें आदि लेके और अनेक जो संसारधर्म हैं। तिनतें रहित है॥ औ स्थालीपुलाक (एक चावलके रांधनेकरि सर्व चावलका रांधना) इस न्याय (दृष्टांत) करि। वा एक ग्रहविषे आकाशकी सिद्धि हुये सर्व ग्रह वा ब्रह्मांडविषे आकाशकी सिद्धिकी न्याई॥ जैसें एक शरीरविषे सच्चिदानंदरूप आत्मा "मैं हूं। मैं भासताहूं। औ मैं सदा प्रिय हूं" इस अनुभवकरि सिद्ध है॥ तैसा अन्य शरीरनविषे औ आकाश आदि प्रपंचविषे बी सिद्ध होवे है॥ यातें सो पूर्ण है कहिये सर्वत्र व्यापक है॥ याहीतें सो ब्रह्मरूप है॥ इस रीतिसें इहां महावाक्यकी अर्थरूप औ ज्ञानकी विषयभूत ब्रह्मात्माकी एकता कथन करी॥ १५॥

॥ दोहा॥

ईश सृष्टिके प्रश्न अरु। उत्तर कही-
समान॥ यह उपदेश तृतीय भो।
याहीको निर्वान॥ ३॥

इति श्री बालबोधिनी टीकासहित बालबोधे ईश्वर औ सृष्टिविषयक प्रश्नोत्तर वर्णन नामक

तृतीयोपदेशः समाप्तः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोपदेश प्रारंभः ॥ ४ ॥

॥ ब्रह्मात्मैक्य सामान्य निरूपण ॥

३८ ॥ शिष्यउवाच ॥

॥ दोहा ॥

कर्ता भोक्ता जीवमैं । ब्रह्म होउं कि
हि रीति ॥ यह संशय उर साल है ।
छेदहु स्वइ सप्रीति ॥ १ ॥

टीकाः- शिष्य कहे हैंः- हे गुरो! कर्ता भोक्ता संसारी जीव जो मैं हूं। सो ब्रह्मरूप किस रीतिसें होवों। इस प्रकारका यह संशय है। सो मेरे उर कहिये हृदयमें साल कहिये लोहके कीलककी न्याई पीडाकारक होनेतें कीलक है ॥ सोई संशय सप्रीति कहिये प्रीतिसहित। आप छेदहु कहिये छेदन करो ॥ १ ॥

३९ ॥ श्रीगुरुरुवाच ॥

॥ दोहा ॥

नभवत पूर्ण ब्रह्म सो। माया घट
जल संग ॥ तन अभिमान करी भ
यो। परिछिन जीव असंग ॥ २ ॥

टीकाः- अब ब्रह्मविषै जीवभावका संभव गुरु कहे हैंः- न भयत कहिये महाकाशकी न्याई परिपूर्ण जो ब्रह्म है। सो असंग हुवा भी कल्पित देहरूप घटविषै स्थित जो माया कहिये अविद्या। तिसरूप घटजलके संगसें शरीरद्वयका अभिमान करिके परिछिन्न जीवरूप भया है ॥२॥

९० ॥ जीवस्वरूप वर्णन ॥

॥ दोहा ॥

घटजल ख प्रति बिंबसम। मतिमैं ब्रह्म अभास ॥ अधिष्ठान कूटस्थ सह। जीव कहीजे तास ॥३॥

टीकाः- घटविषै भरेहुये जलमैं महाकाशके प्रतिबिंबके समान। बुद्धिमैं वा ताकी कारण अविद्यामैं जो ब्रह्मका आभास है। सो विवेक दृष्टिसें अपने अधिष्ठान कूटस्थ चेतन सहित (कूटस्थ चेतनसें तादात्म्यवाला) होयके प्रतीत होवै है। ताकूं जीव कहियें ॥३॥

९१ ॥ दोहा ॥

तन घट मतिजल भास तजि। शेष रह्यो चिद्रूप ॥ महाकाशसम ब्रह्म सो। अपना आप स्वरूप ॥४॥

टीकाः- स्थूल देहरूप घट है। तामैं बुद्धिरूप वा अविद्यारूप जल भर्या है। तामैं भास कहिये जो ब्रह्मका आभास है। तिनकूं मिथ्या जानिके त्यागकरि। शेष रह्या जो तिनका अधिष्ठान चिद्रूप कहिये कूटस्थ चेतन। सो महाकाशके समान ब्रह्म कहिये परिपूर्ण चेतनरूप है॥ सोई अपनो आप स्वरूप है। कहिये घटजलमैं स्थित आकाशके प्रतिबिंबके निजरूप महाकाशकी न्याई। चिदाभासरूप जीवका निजरूप है ॥४॥

४२ ॥ ज्ञान स्वरूप वर्णन ॥

॥दोहा॥

देह अवस्था तीन हैं। कोश पंच पुनि आंहि॥ तीन देहके मध्यगत। मैं साक्षी यह नांहि॥५॥

टीकाः- तीन देह हैं। औ तिनकी तीन अवस्था हैं। फेर तीन देहके अंतर्गत पंचकोश हैं॥ मैं इनका साक्षी हूं॥ यातैं यह साक्ष्यरूप संघात। मैं नहीं हूं। किंतु मैं साक्षीरूप प्रत्यगात्मा इनतैं न्यारा हूं॥५॥

॥दोहा॥

ऐसा जानी रूप निज। ब्रह्म अभि

न्न पिछान ॥ सत चिदानंद सोइ
है । यह निश्चय सो ज्ञान ॥ ६ ॥

टीका:- ऐसा निजस्वरूपकूं जानिके । फेर-ताकूं ब्रह्मसैं अभिन्न जानिके । सोइ ब्रह्म-सैं अभिन्न आत्मा सदा सत् चित् आनंद-रूप है ॥ औ प्रपंचके सत्य हुये द्वैतकी सिद्धितें ब्रह्मात्माकी एकता बनै नहीं । यातें इहां ब्रह्म आत्माकी एकताके कहनेतें । तिस ब्रह्म अभिन्न आत्मातें भिन्न जो कार्यकारणरूप प्रपंच है । सो दर्पणमैं स्थित नगरके प्रतिबिंबकी न्याई । औ स्वप्नकी न्याई । अध्यस्त होनेतें मिथ्या है । यह अर्थतें सिद्ध होवै है ॥ इस प्रकारका जो निश्चय कहिये संशय औ विपर्ययसैं रहित जानना । सो ज्ञान कहिये है ॥ सोइ ज्ञान । प्रपंचरूप अनर्थकी निवृत्ति औ परमानंदरूप ब्रह्मकी प्राप्ति स्वरूप जो मोक्ष । ताका हेतु कहिये साक्षात् साधन है ॥ ६ ॥

॥ दोहा ॥

यह चतुर्थ उपदेश ही । याहीको-
जानि सार । ब्रह्मातम एकत्व क-
हि । इति भौ तजो असार ॥ ७ ॥

इति श्रीबालबोधिनी टीकासहित बाल-बोधे ब्रह्मात्मैक्य सामान्य निरूपण नामक चतुर्थोपदेशः समाप्तः ॥४॥

अथ पंचमोपदेश प्रारंभः ॥५॥

॥ देहत्रयात्म विवेचन वर्णन ॥

४२ ॥ शिष्य उवाच ॥

॥ दोहा ॥

तीन देह सो कौन हैं। को है इनको
रूप ॥ आतम इनतें भिन्न क्यूं।
कहो सु गुरुवरभूप ॥१॥

टीकाः— शिष्य कहै हैः— हे गुरुवरभूप! कहिये श्रेष्ठ गुरुनविषै भूपकी न्याई मुख्य। श्रोत्रिय औ ब्रह्मनिष्ठ गुरुराज! आपनें पूर्व कहे जो तीन देह। सो कौन हैं? यह देहके नामका प्रश्न है॥ औ या तीन देहका रूप कौन है? यह तिनके विभागपूर्वक स्वरूपका प्रश्न है॥ औ आत्मा इनतें भिन्न किस रीतिसें है? यह तिनके विचारके उपयोगका प्रश्न है॥ इन तीन प्रश्नोका जो उत्तर। सो कृपाकरिके कहो ॥४२॥

४८ ॥ श्रीगुरुरुवाच ॥

॥ दोहा ॥

स्थूल लिंग कारण जु तन । कारज
कारण रूप ॥ कारज कारण भाव
बिन । आत्मा आहि अनूप ॥ २ ॥

टीका:- स्थूलदेह । लिंगदेह । औ कारण-देह । ये तीन देह हैं । ऐसें कहे जो तीन देह । सो कार्य औ कारणरूप हैं ॥ तिनमें स्थूल देह औ लिंगदेह । ये दोनूं अविद्यारचित होनेतें अविद्याके कार्यरूप हैं । औ कारणदेह जो है । सो जगत्के कारण मूल प्रकृतिकी अवस्था विशेष-जो अविद्या । तिसरूप होनेतें कारणरूप है ॥ यह तिनका विभाग है ॥ औ जो कार्य कारण भावतें रहित अरु अनूप कहिये प्रपंचगत उपमासें रहित है । सो आत्मा है ॥ २ ॥

अब स्थूलदेहका स्वरूप औ तासें आत्मा-का भेद कहे हैं:-

४९ ॥ दोहा ॥

जाको पंचीकरण हुइ । वे पंचीकृ-
त भूत । ताके पचीस तत्वतें । स्थू
ल देह उद्भूत ॥ ३ ॥

टीका:- जिन भूतनका पूर्व (तृतीय उपदेशके

१ वें दोहे विषे) उक्त रीतिसें पंचीकरण होवे-है। ऐसें जो आकाश। वायु। तेज। जल। औ पृथिवी। ये पंचभूत। वे पंचीकृत कहिये हैं॥ तिनके पचीस तत्वनतें स्थूलदेह। उद्भूत कहिये उत्पन्न होवे है॥

वे पंचीकृत भूतनके पचीस तत्व यह हैः–

पृथ्वीके पांच तत्वः– अस्थि। मांस। नाडी। त्वचा। औ रोम॥ जलके पांच तत्वः– शोणित। शुक्र। मूत्र। प्रस्वेद। औ लाला॥ तेजके पांच तत्वः– आलस्य। कांति। क्षुधा। तृषा। औ निद्रा॥

वायुके पांच तत्वः– आकुंचन (संकोचन)। चलन। वलन। धावन औ प्रसारण॥ आकाशके पांच तत्वः– भय। मोह। क्रोध। काम औ शोक॥ अथवा आकाशके कटीअवकाश। उदरअवकाश। हृदयअवकाश। कंठअवकाश। औ शिरअवकाश। ये पांच तत्व हैं॥

पंचीकृत पंचमहाभूतोंके कार्यरूप पचीस तत्व हैं॥ तिन एक एक भूतके पांच पांच तत्व मैंसें एक एक तत्व। आप आपका मुख्य भाग है औ अन्य च्यारी च्यारी तत्व। अन्य च्यारी भूतनके आयके मिले हैं॥ इस रीतिसें इन

भूतनका परस्पर मिलाप भया है ॥

तिनका परस्पर मिलाप इस रीतिसें जानना:- पृथ्वीके पांच तत्व विषेः- अस्थि। पृथ्वीका मुख्य भाग है ॥ औ मांस। जलका भाग मिल्या है ॥ नाडी। तेजका भाग मिल्या है॥ त्वचा। वायुका भाग मिल्या है॥ रोम। आकाशका भाग मिल्या है॥ जलके पांच तत्व विषेः- शोणित। पृथ्वीका भाग मिल्या है ॥ शुक्र। जलका मुख्य-भाग है ॥ मूत्र। तेजका भाग मिल्या है ॥ प्रस्वेद। वायुका भाग मिल्या है ॥ लाला। आकाशका भाग मिल्या है ॥ तेजके पांच तत्वविषेः- आलस्य। पृथ्वीका भाग मिल्या है ॥ कांति। जलका भाग मिल्या है ॥ क्षुधा। तेजका मुख्य भाग है ॥ तृषा। वायुका भाग मिल्या है॥ निद्रा आकाशका भाग मिल्या है ॥ वायुके पांच तत्वविषेः-आकुंचन। पृथ्वीका भाग मिल्या है ॥ चलन। जलका भाग मिल्या है॥ वलन। तेजका भाग मिल्या है॥ धावन वायुका मुख्य भाग है॥ प्रसारण। आकाशका भाग मिल्या है ॥आकाशके पांच तत्वविषेः- भय। पृथ्वीका भाग मिल्या है॥ मोह। जलका भाग मिल्या है॥ क्रोध। तेजका भाग मिल्या है॥काम। वायुका भाग मि

ल्या है ॥ शोक। आकाशका मुख्य भाग है ॥ अथवा आकाशके पांचतत्व विषे:- कटीअव-काश। पृथ्वीका भाग मिल्या है॥ उदर अवका श। जलका भाग मिल्या है ॥ हृदय अवकाशः तेजका भाग मिल्या है ॥ कंठअवकाश। वायुका भाग मिल्या है ॥ शिरअवकाश आकाशका मु ख्य भाग है॥ पूर्वकहे भयादि लिंगदेहके मुख्य धर्म-हैं। औ स्थूल देहविषै बी घटविषै जलके शीत लताकी न्याई इनका आविर्भाव होवै है। यातें स्थूल देहके गौण धर्म हैं ॥ तातें स्थूलदेहके तत्वों विषे ज्ञेय हैं ॥ कटि अवकाश आदिक स्थूल दे हविषे प्रसिद्ध देखिये हैं। यातें किसी ग्रंथका-रनें वेइ स्थूल देहके तत्व गिने हैं॥ दोनूं रीतिसें आत्मा तिननतें न्यारा है। यह निश्चय करना ॥ उक्त पंचीकरणकी रीतिका विस्तारसें वर्णन औ "अमुक भूतका अमुक तत्व है" इस अर्थविषे-अनेक हेतुनका घटावना।श्रीविचारचंद्रोदयकी तृतीय कलाविषे हमने लिख्या है। तहां देख -लेना ॥

इन पचीस तत्वनके समुदायका नाम स्थू ल देह है ॥ तिसके नाम। जाति (वर्ण)। आश्र-म। वर्ण (रंग)। आकार (स्थूल। कृश। दीर्घ।

हस्य) जन्म मरण आदिक धर्म हैं ॥ ३ ॥
४६ ऐसें स्थूल देहका स्वरूप कहिके अब तासैं आत्माका भेद कहै हैं:-

॥ दोहा ॥

स्थूल जन्म अरु मरणतें। आगे-
पीछे एक ॥ आतम न्यारो स्थूलतें।
घटवत देह अनेक ॥ ४ ॥

टीका:- स्थूल देहके जन्मतें आगे अरु मरणके पीछे विद्यमान औ एक होनेतें। घटतें आकाशकी न्याई। आत्मा स्थूल देहतें न्यारा है। औ अव्यभिचारी है ॥ औ देह घटकी न्याई स्व उत्पत्तितें पहिले औ मरणतें पीछे अविद्यमान औ अनेक होनेतें आत्मातें न्यारा है औ व्यभिचारी है। जो वस्तु सर्व (अधिक) देश औ सर्व (अधिक) कालविषे होवे। सो अव्यभिचारी कहिये है ॥ आत्मा जातें सर्व शरीरनविषे एक होनेतें आकाशकी न्याई व्यापक है। याहीतें सर्व देशविषे है। औ जातें सर्व देहोंकी उत्पत्तितें पूर्व औ नाशतें अनंतर बी विद्यमान है। यातें त्रिकाल अबाध्य है ॥ याहीतें सो सर्वकालविषे है ॥ आत्मा जातें सर्व देश औ सर्वकालविषे है। यातें अव्यभिचारी है ॥ जो वस्तु सर्व (अ-

धिक) देश औ सर्व (अधिक) कालविषै होवै न
हीं। किंतु किसी एक देश औ कालविषै होवै। सो
व्यभिचारी कहिये है॥ देह जातें घटकी न्याई प
रिच्छिन्न है। यातें सर्व देशविषै नहीं है। किंतु-
किसी एक देशविषै है। औ जातें उत्पत्ति औ ना
शवान् है। यातें सर्वकालविषै नहीं है। किंतु कि
सीएक कालविषै है। देह जातें सर्व देश औ सर्व
कालविषै नहीं है। किंतु किसी एक देश कालवि
षै है। यातें व्यभिचारी है॥ जातें आत्मा औ
देह क्रमतें अव्यभिचारी औ व्यभिचारी होने-
तें परस्पर विलक्षण हैं॥ याहीतें तिनका पर
स्पर भेद सिद्ध होवै है॥

इहां यह शंका होवै हैः— ब्रह्मरूप आत्मा-
का औ देह (देहादि) रूप अनात्माका भेद है?
किंवा अभेद है? किंवा भेद औ अभेद दोनूं हैं?
ये तीन विकल्प हम पूछते हैं॥ तिनमें जो तिन
का भेद कहोगे। तो श्रुति स्मृति युक्ति औ वि-
द्वानोके अनुभवकरि सिद्ध जो अद्वैत सिद्धांत
है। ताकी हानि होवैगी॥ औ जो तिनका अभे
द कहोगे। तो तिन दोनूंका विवेचन करना व्यर्थ है
॥ औ जो तिनका भेद अभेद दोनूं कहोगे। तो
तम प्रकाशकी न्याई परस्पर विरुद्ध तिन दोनूं ध-

पेनकी एककालमें एकआश्रयविषे स्थिति बने नहीं ॥ यातें यह तुम्हारा वचन । "सत्य । मिथ्या है" इस वचनकी न्याई व्याघात दोषवाला होवैगा॥

या शंकाका यह समाधान हैः- हे शिष्य! आत्मा औ अनात्माका । पूर्व अविवेचनकालमें । सर्व जीवनकूं अभेद प्रतीत होवे है ॥ पीछे विवेचन कालमें चेतनता आदिक औ जडता आदिक धर्मोंकी विलक्षणताके ज्ञानसें औ "मेरा देह है" इस अनुभवके बलसें । तिनका भेद प्रतीत होवे है ॥ औ विवेचन (पदार्थशोधन) के अनंतर गुरु उपदिष्ट महावाक्यके अर्थके विचारकालमें बी अभेद निश्चय होवे है ॥ यातें आत्मा औ अनात्माके भेद औ अभेद दोनूं अनुभूत हैं॥परंतु तिन दोनूंकी सत्यताकरि किंवा कल्पितताकरि एक धर्मी (आश्रय) विषे स्थिति तो संभवे नहीं। काहेतें तिनकूं तम प्रकाशकी न्याई परस्पर विरोधि होनेतें ॥ किंतु तिन दोनूंमैसें एककी सत्यता औ दूसरेकी कल्पितता कही चाहिये ॥ यातें आत्मा औ अनात्माके भेद औ अभेद इन दोनूंमेसें । भेद कल्पित है औ अभेद सत्य है। यह निश्चय करना ॥ यातें अद्वैत सिद्धांतकी हानि नहीं ॥ औ मुख्य अभेदके निवार-

ण अर्थ जो तिनका विवेचन है। सो बी व्यर्थ नहीं है॥ यह कल्पित भेदयुक्त वास्तव अभेदहीं। तादात्म्य संबंध बी कहिये है॥ सो तादात्म्य अनात्मा औ आत्मारूप कार्य कारणकी न्याई। गुण गुणी औ जाति व्यक्ति औ क्रिया क्रियावान् विषै बी जानि लेना॥ इहां यह प्रक्रिया है:- सत्य औ कल्पित इस भेदकरि भेद दोप्रकारका है॥ तिनमें भिन्न सत्तावाले पदार्थनका जो भेद है। सो कल्पितहीं है॥ जैसें रज्जु औ कल्पित सर्पका भेद है औ जैसें जागृत् औ स्वप्नका भेद है औ जैसें आत्मा औ अनात्माका भेद है। सो कल्पित है॥ दोनूंकी भिन्नसत्ताके होनेतें॥ औ समान सत्तावाले पदार्थनका जो भेद है। सो कहूं सत्य है। कहूं कल्पित है॥ जहां किसी उपाधिकरिके भेद प्रतीत होवै है। तहां सो भेद कल्पित है॥ जैसें समान सत्तावाले घटाकाश औ मठाकाश अरु जीव औ ईश्वरका भेद है। सो उपाधिकृत है। यातें कल्पित है॥ औ जहां उपाधिविना स्वरूपसें भेद प्रतीत होवै है। तहां सो भेद सत्य है॥ जैसें घट पटका भेद है औ शरीरनका परस्पर भेद है औ आकाशादिकनका परस्पर भेद है। सो उपाधिरहित घटादिक-

नके स्वरूपका किया है। यातें सत्य है॥ तिनमैं-
सत्य भेदकौ पारमार्थिक। व्यावहारिक औ प्राति
भासिक भाव (सत्ता) करि तीन प्रकारका कल्प
ना करिये है॥ जिस भेदके अनुयोगी औ प्र
तियोगी दोनूं परमार्थसत्तावाले होवैं। सो भेद
पारमार्थिक होवै॥ सिद्धांतमें शुद्धचेतनसें भिन्न
कोई पारमार्थिक सत्तावाला है नहीं॥ यातें अ-
नुयोगी औ प्रतियोगी पारमार्थिक सत्तावाले हो
वैं नहीं। याहीतें किसी बी पदार्थका किसीके-
साथी पारमार्थिक भेद तो सर्वथा असिद्ध हीं
है॥ औ जिस भेदके अनुयोगी औ प्रतियोगी
व्यवहार सत्तावाले होवैं। सो भेद व्यावहारिक
है॥ जैसें व्यवहारसत्तावाले घट औ पटका औ
पृथ्वीजलका औ जीव ईश्वर आदिकनका परस्प
र भेद है। सो व्यावहारिक है॥ औ जिस भेदके
अनुयोगी औ प्रतियोगी प्रातिभासिक सत्तावा
ले होवैं। सो भेद प्रातिभासिक है॥ जैसें रज्जु-
विषै प्रतीयमान सर्प। दंड। माला। आदिकन-
का भेद है। सो प्रातिभासिक है॥ इस रीतिसें
सत्यभेदविषै बी इतनी विलक्षणता है॥ औ जि
सविषै अन्यका भेद रहता है। ऐसा जो भेदका
आश्रय। सो अनुयोगी कहिये हैं॥ घटविषै पट

का भेद रहता है। ताका घट अनुयोगी है॥ ताही-कूं धर्मीबी कहे हैं॥ औ जिसका अन्य वस्तुविषे भेद होवे। ऐसा जो भेदवाला वस्तु। सो प्रतियोगी कहिये है॥ जैसें घटविषे पटका भेद है। ताका प्रतियोगी पट है॥ ताहीकूं निरूपक बी कहे हैं॥ इस रीतिसें वस्तुगत भेदका स्वरूप कहा॥

ऐसें अभेद बी मुख्य अभेद औ बाधकृत अभेद। इस भेदतें दो भांतिका है॥ तिनमें भिन्न सत्तावाले पदार्थनका जो अभेद है। सो मुख्य औ बाधकृत। इस भेदतें दो प्रकारका है॥ तिनमें बाधकिये विनाही स्वरूपसें जो अभेद प्रतीत होवे है। सो मुख्य है॥ जैसें रज्जु सर्पका औ स्थाणुपुरुषका देह आत्माका औ ब्रह्म जगत्का प्रथम अविवेककालमें अभेद है। सो मुख्य है (भ्रमरूप हुवा बी मुख्यकी न्याई प्रतीत होवे है)। परंतु सो भ्रांतिरूप होनेतें मिथ्या है॥ औ भिन्नसत्तावाले पदार्थनका हीं दोनूमेंसें एकका (न्यून सत्तावालेका) बाध करिके जो अभेद होवे है। सो बाधकृत अभेद है जैसें रज्जु सर्पका औ स्थाणु पुरुषका औ बिंब प्रतिबिंबका औ आत्मा अनात्माका औ ब्रह्म-

अरु जगत्‌का औ ब्रह्म अरु चिदाभासका पीछे बिवेककालमैं अभेद है। सो दोनूंमैंसैं एकका बाधकरिकै होवै है। यातैं सो बाधकृत अभेद है॥ परंतु सो अभेद भ्रांतिकी निवृत्तिका किया है। यातैं सत्य है॥ मिथ्यात्वनिश्चयका नाम बाध है अथवा त्रिकाल अभाव निश्चयका नाम बाध है। ताहीकूं निवृत्ति बी कहै हैं॥ औ समान सत्तावाले पदार्थनका जो अभेद है। सो बाधकिये विनाहीं स्वरूपसैं प्रतीत होवै है। यातैं मुख्य अभेद है॥ परंतु सो मुख्य अभेद बी कहूं सत्य है। कहूं कल्पित है॥ जहां उपाधिरहित वस्तुके स्वरूपका अभेद प्रतीत होवै है। तहां सो अभेद सत्य है॥ जैसैं घटरूप उपाधिकी दृष्टिकूं छोडिके घटाकाश औ महाकाशका अभेद है॥ औ जैसैं ब्रह्म औ कूटस्थ आत्माका अभेद है। सो सत्य है॥ औ जहां दोषरूप उपाधिके बलतैं अभेद प्रतीत होवै। सो अभेद कल्पित है॥ जैसैं संनिधि दोषरूप उपाधिके बलसैं मेघ औ आकाशका अभेद प्रतीत होवै है। सो अभेद कल्पित है॥ इस रीतिसैं अभेदकी बी विलक्षणता है॥ आत्मा औ देहका जो अभेद है। सो कल्पित होवै। न्यूनसत्तावाले देहरूप अनात्माके स्वरूपका

बाधकरिके ही होवै है। यातें सो सत्य है॥ प्रथम अविवेक कालविषै सर्व जीवनकूं भिन्न सत्तावाले आत्मा औ देहका जो अभेद प्रतीत होवै है। सो समानसत्तावाले पदार्थनकी न्याई मुख्य अभेद है॥ सो मुख्य अभेद भ्रांतिरूप होनेतें कल्पित है॥ यातें तिस कल्पित मुख्य अभेदके निवारण अर्थ। मुमुक्षुकूं प्रथम आत्मा औ देहरूप अनात्माका कल्पित (आरोपित) भेदरूप विवेचन किया चाहिये। पीछे ज्ञानकालविषै अनात्माका शास्त्र युक्ति औ अपरोक्ष अनुभवसें बाध करिके तिन दोनूंका अभेद कर्तव्य है॥ महावाक्यके ब्रह्म आत्माकी एकतारूप अर्थके-विचार कालविषै देहादि प्रपंचरूप अनात्माका जो बाध करिये है। सो बाध प्रपंचके निषेधक शास्त्र वचन औ स्वप्नादि दृष्टांतरूप युक्तिका-किया है। यातें परोक्ष है॥ औ महावाक्यके उक्त अर्थके "मैं ब्रह्म हूं" इस दृढ निश्चयरूप अपरोक्ष ज्ञान भये पीछे। जो अनात्माका बाध होवै है। सो अपरोक्ष अनुभवका किया है। यातें अपरोक्ष बाध है॥ तातें अपरोक्ष बोधविषै अपेक्षित बाधके औ अपरोक्ष बोधके फलरूप बाधके भेदतें बोध औ बाधकी परस्पर अपेक्षारूप

अन्योन्याश्रय दोष बी इहां प्राप्त नहीं होवे है ॥ इस रीतिसें आत्मा औ अनात्मा दोनूंका वास्तव अभेद औ कल्पित भेदके अंगीकार किये हुये। अद्वैत सिद्धांतकी हानि नहीं औ विवेचन करना बी सफल है ॥ यह देह औ आत्माके भेद अभेदविषै कह्या जो न्याय (९ प्रकार) सो अन्य शरीर औ अवस्थादिक औ समष्टि प्रपंच औ चिदाभास औ आत्माके भेद अभेदविषै बी शंका औ समाधानपूर्वक जानि लेना ॥ यह अर्थ प्रसंगसें कहा ॥ हे शिष्य ! इस रीतिःसें आत्मा औ स्थूल देहका जातें भेद है । तातें मैं स्थूल देह नहीं औ यह मेरा नहीं । किंतु यह पंचमहाभूतका है ॥ जातें मैं स्थूल देह नहीं । तातें पूर्वउक्त जो नाम । जाति । आश्रम। वर्ण । आकार आदिक याके धर्म हैं । वे बी मैं नहीं औ मेरे नहीं । ऐसें तूं निश्चय कर ॥ ४ ॥

४७ ऐसें स्थूल देहतें आत्माका विवेचन करिके अब सूक्ष्म शरीरका स्वरूप औ तिसतें आत्माका भेद कहै हैं :-

॥ दोहा ॥

भयो न पंचीकरण जिन । वे अपंचिकृत भूत ॥ तिनके सत्तरा तत्वतें ।

लिंग देह उद्भूत ॥ ५॥

टीकाः- जिनका पूर्वउक्त पंचीकरण भया नहीं। ऐसे जो आकाशादिक पंचमहाभूत। वे अपंचीकृतभूत कहिये हैं। तिनहींकूं सूक्ष्मभूत औ तन्मात्राबी कहै हैं॥ तिन अपंचीकृत पंचभूतनके सतरा तत्वनतें लिंगदेह उत्पन्न भया है॥ ५॥

अब सतरा तत्वसहित लिंगदेहकूं कहे हैं:-

॥ दोहा ॥

पंचज्ञान इंद्रिय अरु। कर्मेंद्रियहीं
जान। प्राण पंच मन बुद्धि मिलि।
लिंग देह पहिचान ॥ ६॥

टीकाः- श्रोत्र। त्वचा। चक्षु। जिव्हा औ घ्राण। ये पंच ज्ञानेंद्रिय॥ औ वाक्। पाणि। पाद। उपस्थ औ गुद। ये पांच कर्मेंद्रिय जान॥ औ प्राण। अपान। समान। उदान। औ व्यान। ये पांच प्राणवायु हैं॥ औ संकल्पविकल्पमय वृत्तिरूप मन। औ निश्चयरूप वृत्तिमय बुद्धि। ये सतरा तत्व मिलिके लिंगदेह कहिये हैं॥ ताकूं हे शिष्य! तूं पहिचान॥

शुभ अशुभ क्रियाका कर्तापना औ सुख दुःखका भोक्तापना औ परलोक या लोक-

विषै गमन आगमन। राग द्वेष आदिक औ शमद म आदिक औ अंध मंद अरु पटुपना। इत्यादिक ये लिंगदेहके धर्म हैं॥ इन लिंग आदिक देहके धर्मोंका वर्णन। श्री विचारचंद्रोदय नामक ग्रंथविषै हमनें लिख्या है। तहां देख लेना॥६॥

८८ ॥ दोहा ॥

मरण मूरछा सुषुप्ती। प्रलय ज्ञान
के मांहि॥ नाश लिंगको होत है।
सत आतम सो नांहि॥७॥

टीकाः- मरण मूर्छा सुषुप्ति प्रलय औ ज्ञान। इन पांच अवस्थाविषै। लिंग देहका नाश कहिये अपने कारण अज्ञानविषै लय होवै है। यातें व्यभिचारी होनेतें। यह लिंगदेह असत् है॥ औ आत्मा तो इन सर्वकालविषै ज्यूंका त्यूं प्रकाशमान हुया स्थित है। यातें अव्यभिचारी होनेतें सत् रूप है॥ आत्मा जातें सत्रूप है। यातें सो यह लिंगदेह नहीं है। किंतु घटविषै पूर्ण जलतें न्यारा आकाशकी न्याई। लिंग देहतें न्यारा है॥ यातें हे शिष्य! यह कथन किया जो लिंग देह। सो मैं नहीं औ यह मेरा नहीं। यह अपंचीकृत पंचमहाभूतनका कार्य है॥ जातें यह लिंग मैं नहीं हूं। तातें कर्तापना। भोक्तापना।

सुख । दुःख आदिक । पूर्व उक्त जो याके धर्म हैं । वे बी मैं नहीं औ मेरे नहीं । किंतु ये लिंग देहके हैं ॥ मैं इनका जाननेवाला दृष्टा इनतें न्यारा हूं । यह निश्चय कर ॥ ७ ॥

४९ अब कारण देहके स्वरूपपूर्वक तिसतें आत्माका भेद कहे हैं :-

॥ दोहा ॥

तू जानें नहि आतमा । यही जान अज्ञान ॥ कारण तन अज्ञान है । नसे सु आत्म ज्ञान ॥ ८ ॥

टीकाः - हे शिष्य ! तूं जो आत्माकूं नहीं जानता है औ जिस नहीं जाननेतें "मैं अज्ञानी हूं" ऐसें आपकूं मानता हैं । यह हीं अज्ञान है । ऐसें जान ॥ सो अज्ञान कारणदेह है ॥ "आत्मा है नहीं" यह असत् आवरण है औ "आत्मा भासता नहीं" यह अभान आवरण है ॥ यह दो भांतिका आवरण । औ चिदाभाससहित स्थूल सूक्ष्म शरीर औ कर्तापना आदिक तिनके धर्म इत्यादिक प्रपंचरूप विक्षेपहेतुता । ये दोनूं अज्ञानरूप कारणदेहके धर्म हैं ॥ स्फ कहिये सो कारण देह । आत्माके ज्ञानसें नाश होवै है ॥ ८ ॥

॥ दोहा ॥

स्थूल लिंगको हेतु यह । कारण तन है दृश्य ॥ तूं इनको द्रष्टा सदा । इसतें भिन्न अदृश्य ॥ ९ ॥

टीकाः—स्थूल देह औ लिंगदेहका हेतु होनेतें यह अज्ञान कारणदेह कहिये है ॥ सो कारण देह । जातें तेरा दृश्य है औ तूं सदा इनका द्रष्टा है । यातें तूं इस कारण देहतें भिन्न कहिये न्यारा अदृश्यरूप है ॥ तातें हे शिष्य! मैं कारणदेह नहीं औ यह मेरा नहीं । यह अज्ञानका अंश (भाग) है ॥ औ जातें यह कारणदेह मैं नहीं । यातें इसके धर्म जो पूर्व उक्त आवरण औ विक्षेपहेतुता । सोबी मैं नहीं औ मेरे नहीं । किंतु कारणदेहके हैं ॥ मैं इसका जाननेवाला द्रष्टा इसतें न्यारा हूं । यह निश्चय कर ॥ ९ ॥

॥ दोहा ॥

यह पंचम उपदेश कहि । तीन देह चिद भेद ॥ अधिक युक्ति वर्णन करत । भयो पूर्ण गत खेद ॥ ५ ॥

इति श्री बालबोधिनी टीकासहित बालबोधे देहत्रयात्म विवेचन वर्णन नामक पंचमोपदेशः समाप्तः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोपदेश प्रारंभः ॥ ६॥

॥ अवस्था त्रयात्म विवेचन ॥

५० ॥ शिष्य उवाच ॥

॥ दोहा ॥

तीन देह जड नाहि मैं। यह जान्यो
निज भेव॥ तीन अवस्था अब क
हो। कैसी श्रीगुरुदेव ॥१॥

टीकाः- हे श्रीगुरुदेव! ये कथन किये तीन देह। दृश्य होनेतैं जड हैं औ मैं इनका द्रष्टा चेतन हूं। यातें ये तीन देह मैं नहीं हूं। यह निजभेव कहिये आपका गूढ अभिप्राय। मैंनें जान्या॥ अब तीन अवस्था-कैसी हैं। सो कहो? ॥१॥

५१ ॥ तीन अवस्था औ तिनतैं आत्माका भेद ॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥

॥ दोहा ॥

जाग्रत् स्वप्न रु सुषुप्ती। तीन अव
स्था एह॥ ये तूं नांहि तेरी नहीं। ये
क्रमतें त्रय देह ॥२॥

टीकाः- जाग्रत् स्वप्न अरु सुषुप्ति। येतीन

अवस्था हैं॥ हे शिष्य। ये तीन अवस्था तूं न
हीं औ तेरी नहीं। यह तीन अवस्था। क्रमतें
त्रय देह कहिये तीन देहकी हैं॥ तिनमें स्थूल
देहकी अवस्था जागृत् है औ सूक्ष्म देहकी अव
स्था स्वप्न है औ कारण देहकी अवस्था सुषुप्ति
है॥ यह इनका क्रम है॥२॥

५.२ ॥ जागृत् अवस्था वर्णन ॥

॥ दोहा ॥

जागत हैं नर जाहिसें। सो जागृत
जिय धार॥ चौदा त्रिपुटीसें जु है।
तामें सब ववहार॥३॥

टीकाः—जिस अवस्थाविषै नर कहिये मनुष्य॥
जागत् हैं कहिये जागरणकूं पायके व्यवहार
करते हैं। सो जागृत् अवस्था है। ऐसें जिय
कहिये अपने अंतःकरणमें धार कहिये निश्च
य कर॥ सो जागृत अवस्था कैसी है कि:—
तामें चौदा त्रिपुटीसें जु कहिये जो। सर्व
व्यवहार है। सो है कहिये होता है। ऐसी है
॥इस दोहेके अर्थसें जिस विषै चौदा त्रिपु-
टीसें सर्व व्यवहार होवै है। सो जागृत अवस्था
कहिये है। ऐसा जागृत अवस्थाका लक्षण सू
चन किया॥ औ दोहेके पूर्वार्द्धविषै "जाहिसें

नर जागत हैं" इस वचन करिके यह अर्थ सूच न कियाः – देवता औ मनुष्यनकी जागृत् अवस्था है औ पशु पक्षी आदिकनकी स्वप्न अवस्था है औ वृक्ष पर्वत आदिकनकी सुषुप्ति-अवस्था है॥ तिनमें वृक्षनकी क्षीण सुषुप्ति है औ पर्वत आदिकनकी गाढ सुषुप्ति है॥ जिसतें विनाजगाए आपहीं जागे। सो क्षीण सुषुप्ति कहिये है॥ औ जिसतें विना जगाए जागे नहीं। सो गाढ सुषुप्ति कहिये है॥ औ शुभेच्छा। सुविचारणा औ तनुमानसा। इन तीन ज्ञान-भूमिका पर्यंत अभ्यासवाले जिज्ञासुकी जाग्रत् अवस्था है॥ औ सत्वापत्ति नामक चतुर्थ भूमिकावाले ब्रह्मवित् जीवन्मुक्त विद्वान्‌की स्वस्वरूपके अविचारकालविषे जागृत् जैसी अवस्था है औ विचारकालविषे स्वप्नसें उत्थान हुये पुरुष जैसी अवस्था है॥ औ असंसक्ति नामक पंचम भूमिकावाले ब्रह्मविद्वर जीवन्मुक्तकी उत्थान कालविषे स्वप्नसें उत्थान जैसी अवस्था है औ समाधिकालविषे सुषुप्ति जैसी अवस्था है औ पदार्थाभाविनी नामक षष्ठ भूमिकावाले ब्रह्मविद्वरीयान् पुरुषकी बहुतकरिके सुषुप्ति-जैसी औ कदाचित् स्वप्नसें उत्थान जैसी अव-

स्था है॥ औ तुरीया नामक सप्तमी भूमिका विषै आरूढ ब्रह्मविद्वरिष्ठ जीवन्मुक्तकी सर्वदा गाढ सुषुप्ति जैसी अवस्था है। ये सर्व अवस्था ज्ञानरूप बुद्धिवृत्तिकी हैं॥ क्षेप (लोकवासना। शास्त्रवासना औ देहवासना इन तीन राजसी वासनाकरि उद्भूत रागद्वेषादि युक्तता)। मूढता (निद्रा)। विक्षेप (क्षेपतें विशेष चित्तकी कदाचित् ध्यान युक्तता)। एकाग्रता (एक विषयाकारता)। औ निरोध अनात्मा कारता छोडिके आत्मामें स्थिति अथवा स्वउपादान सत्वगुणमें चित्तका विलय) ये पांच भूमिका योगशास्त्र विषै बुद्धिकी कही हैं॥ तिनके अंतर्गत जातें जाग्रत् आदिक औ शुभेच्छा आदिक अवस्था हैं। यातें ये बी बुद्धिकी हीं अवस्था हैं। आत्माकी नहीं। आत्मा इनका साक्षी हुवा। इनतें सदा न्यारा है। यह निश्चय कर॥ ३॥

५२ ॥ चतुर्दश त्रिपुटी वर्णन ॥

॥ दोहा ॥

चौदा इंद्रिय देवता। अध्यातम अधिदेव॥ शब्दादिक अधिभूत ये। चौदा त्रिपुटी भेव॥ ४॥

टीकाः— पांच ज्ञानेंद्रिय औ पांच कर्मेंद्रिय औ

मन। बुद्धि। चित्त अरु अहंकार। ये च्यारी अंतःकरण॥ ये चौदा इंद्रिय अध्यात्म हैं॥ औ दिशा। वायु। सूर्य। वरुण औ अश्विनीकुमार। ये पांच क्रमतें ज्ञानइंद्रियनके देवता हैं॥ औ अग्नि। इंद्र। उपेंद्र। प्रजापति। मृत्यु। ये पांच कर्मइंद्रियनके देवता हैं॥ औ चंद्रमा। ब्रह्मा। वासुदेव। औ रुद्र। ये च्यारी अंतःकरणके देवता हैं। ये चौदा देवता अधिदैव हैं॥ औ शब्द। स्पर्श। रूप। रस अरु गंध। ये पांच ज्ञानेंद्रियनके विषय हैं॥ औ वचन। आदान। गमन। रतिभोग औ मलत्याग। ये पांच कर्मेंद्रियनके विषय हैं॥ औ संकल्पविकल्प। निश्चय। चिंतन अरु अहंभाव। ये च्यारी अंतःकरणके विषय हैं॥ ये शब्दादिक चौदा विषय अधिभूत हैं॥ ऐसें एक एक इंद्रिय अध्यात्म है। ताका एक एक देवता अधिदैव है। ताका एक एक विषय अधिभूत है॥ इस रीतिसें ये चौदा त्रिपुटीका भेव कहिये भेद है॥ ४॥

५४ ऐसें जाग्रत् अवस्थाका स्वरूप कहिके। अब ताकी सामग्रीकूं कहे हैंः—

॥ दोहा ॥

नेत्रथान शक्ति क्रिया। वाक वैखरी जान॥ स्थूलभोग गुन सत्व है। वि

अरु जीव अभिमान ॥५॥

टीका:- जागृत् अवस्थाविषे चिदाभासरूप जीवका नेत्र स्थान है। यद्यपि जागृत्विषे वी सो सर्व शरीरविषे व्याप्त है। तथापि ताका विशेष-भाग नेत्रविषे है। यातें नेत्रस्थान कहिये है॥औ क्रियाशक्ति है। वैखरी वाणी है। स्थूल भोग है। गुण सत्व है औ विश्व नामकूं प्राप्त भया यह जीव। जागृत्का अभिमानी है। यह जान ॥५॥

५५ अब अन्य अवस्थाविषे आत्माका अन्वय औ जागृत्का व्यतिरेक कहे हैं:-

॥ दोहा ॥

स्वप्न सुषुप्ती मांहि है। जाग्रतको जु अभाव ॥ ताको तूं साक्षी सदा। न्यारो स्वें सद्भाव ॥६॥

टीका:- स्वप्न औ सुषुप्तिविषे जागृत् अवस्थाका जो अभाव होवे है। सो तिसको व्यतिरेक है औ हे शिष्य! तिसका तूं साक्षी है। सो सदा स्वरूपसें सद्भाव कहिये सत्तावाला है॥ यह तेरा तहां अन्वय है। याहीतें तूं स्थूल देह सहित जागृत् अवस्थातें न्यारा है॥ पुष्पमालाविषे अनुस्यूत तंतुकी न्याई। जो देह सहित सर्व

अवस्थाविषे आत्माका अनुस्यूतपना। सो आत्माका अन्वय कहिये है॥ औ पुष्पनकी न्याई परस्पर वा स्वअधिष्ठान आत्मातें जो देहसहित तीन अवस्थाका भेद। सो देह सहित अवस्थाका व्यतिरेक कहिये है॥ इहां व्यतिरेक नाम अभावका है औ अन्वय नाम भावका है॥६॥

५६   ॥स्वप्न अवस्था वर्णन॥

॥दोहा॥

जाग्रत्‌मैं अनुभव किये। विषय वासना जास॥ ज्ञान विषय दो रूप है। स्वप्न कहीजें तास॥७॥

टीकाः– जाग्रत अवस्थाविषे श्रवणसें वा नेत्रसें वा अन्य इंद्रियसें अनुभव किये विषयनके ज्ञानसें जन्य जो वासना है॥ वे वासना बालके अग्रभाग जैसी सूक्ष्म जो कंठविषे हिता नाम नाडी है। तिसविषे रहती हैं॥ औ जास कहिये जिस संस्काररूप वासनाके निद्राकालमें शब्दादिक विषय औ तिनका ज्ञान ये दो रूप कहिये आकार होवे हैं। तास कहिये ताकूं स्वप्न अवस्था कहिये॥७॥

५७   ॥ स्वप्नावस्थाकी सामग्री ॥

॥दोहा॥

उ.६

कंठ थान बल जान है। वाक मध्य-
मा जान ॥ सूक्षम भोग रु रजोगुन।
तैजस है अभिमान ॥ ८ ॥

टीकाः- स्वप्न अवस्थाविषे चिदाभासरूप जीव-
का कंठस्थान है औ बल जो शक्ति। सो ज्ञान
है॥ औ मध्यमा (कंठगत) वाचा है॥ सूक्ष्म
(वासनामय) भोग है॥ गुण रजो है औ तै-
जस नामकूं प्राप्त भया यहहीं जीव। ता अव-
स्थाका अभिमानी है॥ यह स्वप्नकी साम-
ग्री कही ॥८॥

५८ अब स्वप्न संबंधी अन्वय औ व्यतिरेककूं
कहे हैंः-

॥ दोहा ॥

जाग्रत सुषुप्ति मांहि है। स्वपनेको
जु अभाव ॥ ताको तूं साक्षी सदा।
न्यारो स्वै सद्भाव ॥ ९ ॥

टीकाः- जाग्रत् औ सुषुप्तिविषे स्वप्न अव-
स्थाका जो अभाव होवे है। सो ताका व्यतिरे-
क है औ तिस व्यतिरेकका साक्षी जो तूं। सो
सदा स्वस्वरूपसें सद्भाववाला है। यहहीं
तेरा तहां अन्वय है॥ यातें तूं इनतें न्यारा है
॥९॥

५९ ॥ सुषुप्ति अवस्था वर्णन ॥

॥ दोहा ॥

जातें उठिकें ज्ञान इइ। कछु न जा
न्यो कास ॥ ऐसी निद्रा गाढ है।
कहैं स्वषुप्ती तास ॥१०॥

टीकाः- जिस अवस्थातें उथ्थान होयके "मैं
नें कछु बी किस विषयकूं जान्या नहीं" ऐ
सा निद्राकालविषे अनुभवकिये अज्ञानका स्म
रणारूप ज्ञान होवे है। ऐसी जो गाढ निद्रा
है। ताकूं सुषुप्ति कहै हैं ॥१०॥

६० ॥ सुषुप्ति अवस्थाकी सामग्री ॥

॥ दोहा ॥

हृदय थान बल द्रव्य गि । पश्यंती
पहिचान॥ आनंदभोग तमोगुन।
प्राज्ञ जीव अभिमान ॥११॥

टीकाः- सुषुप्ति अवस्था विषे जीवका हृदयस्था
न है औ बल जो शक्ति। सो द्रव्य रूप है॥ जा
तें तहां क्रियारूप औ ज्ञानरूप व्यवहारका अ
भाव है औ अज्ञानरूप द्रव्य जो वस्तु। ताहीका
सद्भाव है। यातें तहां द्रव्यशक्ति कहिये है॥ औ
गिर कहिये वाणी सो पश्यंती है औ आनंद
भोग है औ गुण तमो है औ प्राज्ञ नामकूं

प्राप्त भया जीव तो सुषुप्तिका अभिमानी है ॥ यह सुषुप्तिकी सामर्थ्य है। ऐसें पहिचान करि हिये जान ॥ ११ ॥

६। अब सुषुप्ति संबंधी अन्वय औ व्यतिरेक कूं कहै हैं:-

॥ दोहा ॥

जाग्रत् स्वप्नविषे हि है। सुषुप्तिको जु अभाव ॥ ताको तूं साक्षी सदा। न्यारो स्वै सद्भाव ॥ १२ ॥

टीकाः- जाग्रत् औ स्वप्नविषे सुषुप्तिका जो अभाव है। सो ताका तहां व्यतिरेक है औ तिस व्यतिरेकका साक्षी जो तूं। सो सदा स्वरूपसें सद्भाववाला हैं। यह तेरा तहां अन्वय है॥ याहीतें तूं तिस सुषुप्ति अवस्थातें न्यारा हैं ॥१२॥

॥ दोहा ॥

जाग्रत स्वप्न सुषुप्तितें। न्यारो है निजरूप॥ यह कहिके उपराम भौ याको षष्ठ अनूप ॥६॥

इति श्री बालबोधिनी टीकासहित बालबोधे अवस्थात्रयात्म विवेचन नामक षष्ठोपदेशः समाप्तः ॥ ६॥

अथ सप्तमोपदेश प्रारंभः ॥ ७॥

॥ पंचकोशात्म विवेचन वर्णन ॥

६२ ॥ शिष्य उवाच ॥

॥ दोहा ॥

तीन अवस्था नाहिं मैं। यह समझ्यो
निजभेव ॥ पंचकोशके अब कहो।
नाम रूप गुरुदेव ॥ १ ॥

टीकाः- हे गुरुदेव ! मैं तीन अवस्था नहीं औ ये मेरी नहीं। यह निजभेव कहिये आपका अभिप्राय मैंने जान्या ॥ अब पंचकोशके नाम औ रूप कहिये आकार कृपाकरिके कहो ॥ १ ॥

६३ ॥ श्रीगुरुरुवाच ॥

॥ दोहा ॥

अन्न प्राण रु मनोमय। चौथा है
विज्ञान ॥ अनंदमय पंचम कह्यो
पंच कोश ये जान ॥ २ ॥

टीकाः- प्रथम अन्नमय है औ द्वितीय प्राणमय है औ तृतीय मनोमय है औ चतुर्थ विज्ञानमय है औ पंचम आनंदमय कोश कहा है। ये पंचकोशके नाम जान ॥ २ ॥

अब पंचकोशनके आकारके कथन पूर्वक तिनकी अनात्मता कहै हैं:-

॥ दोहा ॥

स्थूल देह सो अन्नमय। प्राणादिक त्रिय लिंग॥ कारण तन आनंदमय। तूं यह नाहि अलिंग ॥ ३ ॥

टीका:- माता पिताने खाया जो अन्न। तातें भया जो रज (माताका रुधिर) औ वीर्य (पिताका रेत)। तिसतें जो माताके उदरविषै उत्पन्न होवै है औ जन्मके अनंतर क्षीर आदिक अन्नसें-जो बढता है औ मरणके अनंतर जो अन्नरूप पृथ्वीविषै लीन होता है। ऐसा जो स्थूलदेह सो अन्नमय कोश कहिये है॥ औ पांच कर्म इंद्रिय औ पांच प्राण। ये दशतत्व मिलिके प्राणमयकोश कहिये है॥ औ पांच ज्ञान इंद्रिय। औ मन। ये षट् तत्व मिलिके मनोमय कोश कहिये है॥ औ पांच ज्ञानइंद्रिय औ बुद्धि। ये षट् तत्व मिलिके विज्ञानमयकोश कहिये है॥ ऐसें प्राणादिक तीन कोश लिंग देहरूप है॥ यद्यपि प्राणमय। मनोमय। विज्ञानमय। ये तीन कोश लिंग देहरूपही हैं। तथापि प्राणमय कोश। केवल रजोगुणकी अवस्था है औ

तूं इनतें न्यारा होनेतें पंचकोशातीत हैं ॥ इन पंचकोशनका विस्तारसें निरूपण औ आत्मातें तिनका विवेचन । हमनें श्रीपंचदशीकी तत्वप्रकाशिका नामक भाषा टीकाके षष्ठ प्रकरण (चित्रदीप) विषे औ ईशाद्यष्टोपनिषद्गत तैत्तिरीय उपनिषद्के व्याख्यानविषे औ श्रीविचारचंद्रोदयकी चतुर्थकलाविषे किया है। जिसकूं इच्छा होवै। सो तहां देख लेवे ॥ विस्तारके भयसें इहां लिख्या नहीं ॥ ३॥

९४ ननु। हे गुरो ! मैं जब तीन शरीर औ तीन अवस्था औ पंचकोशतें न्यारा हूं। तब मेरा क्या स्वरूप है ? यह शिष्यकूं शंका भई। तहां गुरु कहे हैं:—

॥ दोहा ॥

द्रष्टा साक्षी सर्वका। सत्य चित आनंदरूप ॥ ध्यान जास योगी धरें। तेरो सोइ स्वरूप ॥ ४॥

टीका:— देहादिक सर्वका देखनेवाला (जाननेहारा) होनेतें जो द्रष्टा है औ उदासीन (राग द्वेषरूप अंतःकरणके धर्मसें रहित)। समीपवर्ति चेतनरूप। होनेतें या अंतःकरण औ ताकी वृत्तिमें स्थित चेतनमात्र होनेतें। जो साक्षी है औ-

तीन काल (जाग्रदादि। बाल्यादि। भूतादि) विषे अबाधित होनेतें जो सत्य है औ तीनकालविषे सर्वका प्रकाशक होनेतें जो चित् है औ परमप्रेमका विषय होनेतें जो आनंदस्वरूप है औ-निर्विकल्प समाधिवान् योगी जन। अपना आप जानिके जिसकूं ध्यावते हैं। ऐसा जो ब्रह्मसें अभिन्न आत्मतत्व है। सोई तेरा स्वस्वरूप कहिये निजस्वरूप है॥ उक्त आत्माके विशेषणोंका विशेष वर्णन। श्रीविचारचंद्रोदयकी सप्तमी तथा अष्टमी कलाविषे हमने लिख्या है॥ जिसकूं जिज्ञासा होवे सो देखलेवे॥ इहां यह भाव है:- यह कहा जो आत्मा सो अविवेक दृष्टिसें जीव होयके भासता है॥ ताके चक्षु कंठ औ हृदय ये तीन देश हैं औ जाग्रत् स्वप्न औ सुषुप्ति ये तीन काल हैं औ स्थूल सूक्ष्म कारण। ये तीन वस्तु (भोगकी सामग्री) हैं। यह हीं तीन देह हैं। औ विश्व तैजस अरु प्राज्ञ। ये तीन जाग्रत् स्वप्न औ सुषुप्ति अवस्थाविषे क्रमतें अभिमानी हैं। औ जाग्रत्सें आदि लेके मोक्ष पर्यंत जो संसार है। सो जीवका कार्य है। औ अल्पज्ञता आदिक ताके धर्म हैं॥ इस सर्व सामग्री सहित बुद्धिगअविद्या औ ताका अधिष्ठान साक्षी आत

सर्व मिलिके जीव कहिये है औ इस सर्व सामग्री सहित बुद्धि वा अविद्याका मिथ्या बुद्धिसैं त्याग करिके अवशेष रहा जो बुद्धि उपहित वा अविद्या उपहित चेतनरूप साक्षी आत्मा। सो जीवपदका लक्ष्य है औ सोई तो जीवका निजरूप है ॥५॥

॥ दोहा ॥

पंचकोशतें आतमा। न्यारो है निज रूप ॥ यह कहिके पूरण भयो। सुनि उपदेश अनूप ॥७॥

इति श्री बालबोधिनी नामक टीका सहित बालबोधे पंचकोशात्म विवेचन वर्णन नामक सप्तमोपदेशः समाप्तः ॥७॥

अथ अष्टमोपदेश प्रारंभः ॥८॥

॥ तत्वंपद वाच्यार्थ लक्ष्यार्थ कथन पूर्वक तदेकता निरूपण ॥

६५ ॥ शिष्य उवाच ॥

॥ दोहा ॥

ईश जगत अरु जीवको। समज्यो श्रीगुरु भेद ॥ अब तत् त्वंपद अर्थ

पुनि। ताको कहो अभेद ॥ १ ॥

टीकाः- हे श्रीगुरु! जीव ईश औ तिनकी उपाधिरूप जगत्‌के स्वरूपका जो भेद। सो मैं समज्या ॥ अब "तत्वमसि" इस महावाक्यविषे स्थित जो तत् पद औ त्वंपद हैं। तिनका वाच्य अर्थ अरु लक्ष्य अर्थ कहो? फेर तिन दोनूंके लक्ष्य अर्थका अभेद कहो ॥ १ ॥

६६ ॥ तत्पदार्थ वर्णन ॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥

॥ दोहा ॥

मायासहित ब्रह्म है। ईश स्रु तत्पद वाच्य ॥ मायारहित ब्रह्म है। तत्पदलक्ष्य अवाच्य ॥ २ ॥

टीकाः- मायासहित ब्रह्मरूप जो ईश्वर। सो तत्पदका वाच्य अर्थ है औ मायारहित जो शुद्ध ब्रह्म है। सो अवाच्य कहिये वाणीका अविषय ऐसा तत्पदका लक्ष्य अर्थ है ॥ २ ॥

६७ ॥ त्वंपदार्थ वर्णन ॥

॥ दोहा ॥

चिदाभास सह बुद्धियुत। चिदसु त्वंपद वाच्य ॥ बिन उपाधि कूटस्थ चिद। त्वंपद लक्ष्य अवाच्य ॥ ३ ॥

टीकाः- चिदाभाससहित बुद्धिकरि युक्त कू-
टस्थ चेतनरूप जो जीव। सो त्वंपदका वाच्य
अर्थ है ॥ औ चिदाभाससहित बुद्धिरूप उपा-
धिसैं रहित केवल जो कूटस्थ चेतन है। सो
अवाच्य कहिये वाणीका अविषय त्वंपदका
लक्ष्यअर्थ है ॥ इहां यह भाव है:- शब्दका
अर्थसैं जो संबंध। सो शब्दकी वृत्ति कहियतु है ॥
सो वृत्ति। शक्ति औ लक्षणा इस भेदतैं दो भां-
तिकी है ॥ शब्दका अर्थके साथि जो साक्षात् सं-
बंध (प्रवृत्ति)। सो शक्तिवृत्ति है ॥ ता शक्तिवृ-
त्तिसैं जो अर्थ जानिये है। सो वाच्यअर्थ क-
हिये है ॥ औ तिस वाच्यअर्थका जो संबंध।
सो लक्षणावृत्ति कहिये है ॥ ता लक्षणासैं जो
अर्थ जानिये है। सो लक्ष्यअर्थ कहिये है ॥ सो
लक्षणा जहत्। अजहत् औ भागत्याग। इस
भेदतैं तीन भांतिकी है ॥ तिनमैं महावाक्यसैं
भागत्यागकाहीं उपयोग है ॥ ३ ॥

६८ ॥ तत्त्वंपदार्थके लक्ष्यार्थकी एकता ॥

॥ दोहा ॥

ज्यूं घट मठकूं त्यागिकें। घट मठ-
नभ है एक ॥ त्यूं माया मति त्यागि
कें। ब्रह्म आतमा एक ॥ ४ ॥

टीकाः-जैसें घटाकाश औ मठाकाशविषे स्थित जो घट औ मठरूप उपाधि भाग। ताकूं त्यागिके अवशेष रह्या जो घट मठ संबंधी-नभ कहिये आकाश। सो एक हीं है॥ तैसें ईश्वर औ जीवविषे स्थित जो माया औ बुद्धिरूप उपाधिभाग। ताकूं चिदाभास औ धर्मसहित त्यागिके अवशेष रह्या जो ब्रह्म औ आत्मा। सो एक हीं है॥ ४॥

॥ दोहा॥

जीव ईश दो वाच्य हैं। ब्रह्म आतमा
लक्ष्य॥ भागत्यागसु वाच्य तजि।
एकहि हैं दो लक्ष्य॥ ५॥

टीकाः- तत्पद औ त्वंपदके ईश्वर औ जीव। ये दोनूं क्रमतें वाच्य हैं औ ब्रह्म अरु आत्मा ये दोनूं क्रमतें लक्ष्य हैं॥ तिनविषे भागत्याग लक्षणासें विरोधी वाच्यभागकूं त्यागिके। अवशेष रहे जो अविरोधी लक्ष्य अर्थ। सो दोनूं एकहीं हैं॥ ५॥

॥ दोहा॥

दीपक अग्नी अल्प है। सूरज बडा-
विशेष॥ दाहक उष्ण प्रकाशता।
हैं दोनूंमें एक॥ ६॥

टीकाः- जैसें दीपकका जो अग्नि है। सो अल्प उपाधिवाला होनेतें अल्प है औ सूर्यका जो अग्नि है। सो विशेष (महत् उपाधिवाला) होनेतें बडा है॥ ऐसें उपाधिकृत तिनका भेद है। परंतु दाहकता उष्णता औ प्रकाशकता रूप जो महातेजके धर्म हैं। वे दोनूंमें एक (तुल्य) हैं॥ यातें सामान्यरूप जो महातेज। सो दोनूंमें एकही हैं॥६॥

॥ दोहा ॥

व्यष्टि उपाधी जीव है। ईश समष्टि उपाधि॥ सत चिदानंद एक है। सब इ रहित निरुपाधि॥७॥

टीकाः- तैसें व्यष्टिरूप अल्प उपाधिवाला चेतन जीव है औ समष्टिरूप महत् उपाधिवाला चेतन ईश्वर है। ऐसें उपाधिकृत तिनका भेद प्रतीत होवे है। परंतु सत् चित् आनंदरूप जो ब्रह्मके धर्म हैं। वे दोनूं विषे एक (तुल्य) हैं॥ यातें जीव ईश दोनूं विषे अनुस्यूत सामान्यचेतनरूप निरुपाधिक जो ब्रह्मचेतन। सो जीव ईश्वर दोनूं विषे अखंड (एकहीं) है॥७॥

६९ अब अभेदके उपदेश कियेहुयेबी कदाचित् सम्यक् अभेदज्ञानके अभावतें जो शिष्यके

हृदयमें। तत्पदके अर्थविषे परोक्षताकी भ्रांति औ त्वंपदके अर्थविषे परिच्छिन्नताकी भ्रांति अवशेष होवे। तो ताके निवारणअर्थ श्रीगुरु परस्पर विषे परस्परकी एकताके कहनेरूप ओतप्रोत भावकूं उपदेश करे हैं:-

॥ दोहा ॥

सोहं हंसो एक है। तुम मत जानो
दोय ॥ जाने जिसनें दोइ कर। ति
हि गुरु मिल्यो न कोय ॥८॥

टीकाः-सो कहिये तत्पदका लक्ष्य ब्रह्म। अहं कहिये मैं हूं औ हं कहिये त्वंपदका लक्ष्य आत्मारूप मैं। सो कहिये ब्रह्म हूं॥ ऐसें ओतप्रोतभावकरिके ब्रह्म औ आत्मा ये दोनूं एक हैं। हे शिष्य! तुम दोय मत जानो! जिस पुरुषनें ब्रह्म औ आत्माकूं दोइ करिके जाने है। तिसकूं कोई गुरु मिल्या नहीं। किंतु सो निगुरा ही है ॥८॥

७० अब उक्त अर्थविषे प्रमाणरूप सर्व शास्त्रनका सार कहे हैं:-

॥ दोहा ॥

अर्ध दुहाकरि कहत हूं। कोटि ग्रंथ
को सार॥ब्रह्म सत्य मिथ्या जगत।

जीव ब्रह्म सूत्धार ॥ ९ ॥

टीकाः— अर्ध दोहाकरिके कोटि ग्रंथनका सार कहता हूं किः— इस जगत्के सर्व वस्तुनविषे। अस्ति। भाति। प्रिय। नाम औ रूप। ये पांच अंश हैं॥ तिनमें आदि तीन ब्रह्मरूप हैं औ पीछले दो जगत्रूप हैं॥ तिनविषे अस्ति भाति प्रियरूप जो ब्रह्म। सो सर्वकालमें सर्वविषे समान अनुस्यूत है। यातें अव्यभिचारी है॥ याहीतें सत्य है औ नामरूपमय जो जगत्। सो कदाचित् किसी किसी देशविषे है। यातें व्यभिचारी है। याहीतें मिथ्या है औ मिथ्याजगत्के अंतर्गत जो शुद्धचेतनविषे ईश जीवभावकी उपाधिरूप देहादिक हैं। वे बी स्वप्नके हस्ती आदिककी न्याई अविद्यमान हुये भासते हैं। यातें मिथ्या हैं। याहीतें तिस उपाधिका किया ईश जीवभाव बी मिथ्या है॥ यातें जीव जो है। सो ब्रह्म है। यह सूत्धार कहिये सर्व शास्त्रोंका निर्णयरूप निचोड है। ताकूं सम्यक् धारण कर॥ ९॥

७१ अब स्वउपदेशकी समाप्ति करते हुये श्रीगुरु। अपनें शिष्यकूं बोधकी दृढता अर्थ सूचना करे हैंः—

॥ दोहा ॥

वेदउक्त शिष तैं सुन्यो। यह उपदेश हमार॥ श्रवण मनन अरु ध्यानकरि। दृढकर संग निवार॥१०॥

टीकाः- हे शिष्य! तैंने यह हमारा वेदउक्तउपदेश श्रवण किया। तातें शब्दके स्वभावकरि तेरे चित्तमें दृढ (संशय अरु विपरीत भावनासें रहित) अथवा अदृढ (संशय अरु विपरीत भावनासहित) अपरोक्ष बोध अवश्य उदय भया है। यह मेरेकूं अनुमानप्रमाणसें निश्चय भया है॥ काहेतें शब्दका यह स्वभाव हैः- देशके अंतरायवाले किंवा कालके अंतरायवाले वस्तुका शक्तिलक्षणाके ज्ञानवाले पुरुषकूं शब्दसें परोक्ष हीं ज्ञान होवे है। अपरोक्ष नहीं औ देशकालके अंतरायसें रहित समीपदेशविषे औ वर्तमानकालविषे स्थित वस्तुका शब्दसें परोक्ष औ अपरोक्ष दोनूं प्रकारका ज्ञान होवे है॥ घट है। स्वर्ग है। आत्मा है। ब्रह्म है। इत्यादि "अस्ति(है)" इस रूपसें अन्य वस्तुका किंवा श्रोताके स्वरूपका बोधक जो वाक्य सो अवांतर वाक्य कहियेहै॥ तिस अवांतर वाक्यसें तो अंतराय रहित वस्तुकी बी शक्तिलक्षणाके ज्ञानवाले पुरुषकूं निय-

प्रकारि परोक्ष ज्ञान होवे है ॥ औ यह घट है। तूं
दशम है। तूं ब्रह्म है। इत्यादि अन्य वस्तुका किं
वा श्रोताके स्वरूपका बोधक जो वाक्य सो महा-
वाक्य कहिये है ॥ तिस महावाक्यसें तो अंतरा
यरहित वस्तुका शब्दकी शक्ति औ लक्षणारूप
वृत्ति (शब्दके अर्थसें संबंध) के ज्ञानवाले पुरु
षकूं नियमसें दृढ अथवा अदृढ अपरोक्ष बो
ध होवे है ॥ अत्यंत शुद्ध अंतःकरणवाले उत्तम
अधिकारीकूं तो उक्त महावाक्यरूप शब्दसें दृढ
बोधहीं होवे है ॥ ताकूं तो अपरोक्ष बोधके उद
य भये पीछे संशयादि निवारण अर्थ श्रवण म
ननादिरूप प्रयत्न कर्तव्य नहीं औ जा पुरुषका
अंतःकरण अत्यंत शुद्ध नहीं। किंतु किंचित् म
ल वा विक्षेप दोषकरि युक्त है। सो मध्यम किंवा
कनिष्ठ अधिकारी है। ताकूं उक्त महावाक्यरूप
शब्दसें अंतरायरहित वस्तुकाबी अदृढ अपरो
क्ष बोध होवे है ॥ ताकूं अपरोक्ष बोधके उदय-
भये पीछे बी संशयादि निवारण अर्थ श्रवण म
ननादिरूप प्रयत्न कर्तव्य है। यह अर्थ प्रसंग
सें कह्या ॥ हे शिष्य जातें तूं शास्त्र अभ्यासद्वा
रा। औ पूर्वउक्त प्रकारसें बी शब्द (तत्पद औ
त्वंपद) की शक्ति वृत्ति औ लक्षणावृत्तिके ज्ञान

वाला है औ श्रुति युक्ति अरु मेरे (गुरुके) वच-
न औ अपनें अनुभवरूप प्रमाण करिकें तेरेकूं
जानने योग्य जो ब्रह्मसें अभिन्न आत्मारूप प्र
मेय (ज्ञेय वस्तु) है। सो सर्वात्मा होनेतें किसी
सें दूर औ नजीक नहीं कहिये है। किंतु सर्वका अ
पना आप होनेतें सर्वकूं अत्यंत समीप है॥ तिसअ
त्यंत निकटवर्ति ब्रह्मरूप आत्माका मैनें "तत्वम
सि (सो तूं है)" इत्यादि महावाक्यसें उपदेश कि
या है॥ औ मैं तुजकूं जानने योग्य ब्रह्म औ आत्मा
की एकतारूप तत्वके अज्ञानके किये भ्रमसें बी-
उपराम भया है ऐसें देखता हूं॥ औ तेरेकूं मुमु-
क्षुताके अनंतर वांछित जो आत्मासें अभिन्न
औ विस्मरण भये कंठभूषणकी न्याई नित्यप्रा
प्त ब्रह्मकी प्राप्ति थी। सो ताके ज्ञानद्वारा सिद्ध भ
ई। तातें बुद्धिके चंचलताकी हेतु रजोगुणजन्य इ
च्छाकी निवृत्तिद्वारा अंतर्मुख भई बुद्धिवृत्ति विषे
प्रतिबिंबकूं प्राप्त भये स्वरूपानंदके अनुभवकी सू
चन करनेहारी जो मुखकी प्रसन्नता भई है। ताकूं
बी देखता हूं॥ यातें उक्त लिंगोंसें तेरेकूं अवश्य-
ब्रह्मात्माकी एकताका अपरोक्ष बोध उदय भया
है। यह मुजकूं निश्चय होवै है॥ परंतु सो बोध
दृढ भया किंवा अदृढ भया। यह निश्चय मुजकूं

नहीं होवे है ॥ काहेतें अंतःकरण औ ताकी वृत्ति
कूं इंद्रिय अगोचर होनेतें औ अंतःकरण अरु ता
की वृत्तिनकूं अंतःकरण औ अंतःकरणकी वृत्तिन
विषे स्थित चेतनमात्ररूप साक्षीकरि गम्य होनेतें
औ ज्ञानीकी स्वस्वरूपविषे गतिरूप ज्ञानकूं आ
काशगत पक्षीकी औ विद्युतकी औ सुखदुःखा
दि धर्मवाले मनकी मनुष्यकरि लक्ष्यगतितें औ
जलप्रवाहके सन्मुख चलनेवाले अल्प मत्स्यकी
योगीकरि लक्ष्य गतितें औ सर्वज्ञ सिद्ध योगीकी
दुर्लक्ष्य गतितें वी अलक्ष्य होनेकरि ज्ञानमार्गके-
अदर्शी अज्ञपुरुषकरि औ ज्ञानमार्गके दर्शी अन्य
तज्ञपुरुषकरि दुर्विज्ञेय होनेतें अपरोक्षताकरि ते
री ज्ञाननिष्ठाकी दृढता वा अदृढताकूं मैं नहीं जा
न सकता हूं ॥ औ बहुकालके सहवासकरि वच-
नादिकसें बोधित गुणातीतता निकटवर्त्ती मृत्युसें
निर्भयता। अनिष्ट अरु इष्ट अर्थविषे शोकमोहका
अभाव। शरीर वाणी मनकृत कर्मविषे असंगता
आदिक ज्ञानीके स्वसंवेद्य लक्षण आदिक लिंगोंसें
अन्य तज्ञ पुरुषकरि अनुमानसें जानने योग्य तेरे
बोधकी दृढता औ अदृढताकूं मेरे समीप उपदेश
के अनंतर तेरे बहुतकाल पर्यंत सहवासके अभा
वतें अनुमानसें वी मैं नहीं जान सकता हूं ॥ औ मु

मुमुक्षुकूं तो पूर्वपुण्यसें अरु तिसके शांतिकारक व
चनोंसें "यह ज्ञानी है" ऐसी भावना होवै है ॥ यह
दोहेके पूर्वार्द्धका अर्थ है ॥

यातें हे शिष्य! मैं तेरेकूं यह विज्ञप्ति करता
हूं कि:- जो तेरेकूं संशय औ विपरीत भावनारू-
प दोषसें रहित दृढ बोध भया है। तो तूं कृतकृ-
त्य औ प्राप्तप्राप्य भया है। यातें तुजकूं तिन दोषन-
की निवृत्ति अर्थ। श्रवण मनन आदिक कछुबी प्र
यत्न कर्तव्य नहीं है॥ औ जो तेरेकूं संशय औ वि
परीत भावनारूप दोषसहित "मैं ब्रह्म हूं" इस नि
श्चयरूप अदृढ (मंद) बोध भया है। तौ तुजकूं उ
पनिषद्रूप किंवा ताके अनुसारी अन्य भाषाग्रं-
थरूप "वेदांत शास्त्र। ब्रह्म औ आत्माकी एकता
का प्रतिपादक है किंवा अन्य अर्थका प्रतिपादक है"
इस आकारवाला केवल प्रमाणगत संशय होवै तो
उपनिषदनके वा तदनुसारी अन्य भाषाग्रंथनके अ
भ्यासरूप विचारद्वारा उपक्रम उपसंहार (आरंभ-
अरु समाप्ति) १ अभ्यास (वारंवार कथन) २ अ
पूर्वता (अद्वैत वस्तुकी अन्य प्रमाणकी अविषयता
करि औ स्वप्रकाशताकरि अलौकिकता) ३ फल (अ
नर्थनिवृत्ति औ परमानंदप्राप्तिरूप मोक्ष) ४ अर्थ
वाद (भेदज्ञानकी निंदा औ अभेदज्ञानकी स्तुति)

५ औ उपपत्ति (अद्वैतज्ञानके अनुकूल दृष्टांतरूप युक्ति) ६. श्रीपंचदशीके तृप्तिदीपके १०१ श्लोकके टिप्पणविषे तथा ईशोपनिषद्के व्याख्यानविषे तथा वृत्तिरत्नावलीविषे हमारी लिखे हुये इन तात्पर्यके निश्चायक षट् लिंगरूप युक्तियोंसें अद्वैत ब्रह्मविषे वेदांतके तात्पर्यका निश्चयरूप औ मेरे मुखतें महावाक्यके उपदेशके सुननेरूप अंगी (साध्य) श्रवणतें भिन्न अंग (साधन) रूप श्रवण कर्तव्य है॥ औ जो तेरेकूं उपनिषद्रूप प्रमाणकरि जानने योग्य ब्रह्मात्माकी एकतारूप जो प्रमेय है। सो यद्यपि उपनिषदोंविषे तो अवश्य प्रतिपादन किया है। यह तिन उपनिषद्नके अथवा अन्य संस्कृत वा प्राकृत ग्रंथनके विचारसें किंवा सत्यवक्ता गुरुके वाक्यविषे दृढ विश्वाससें जानता हूं। तथापि ब्रह्म जो परमेश्वर सर्वज्ञतादि गुणयुक्त। औ अविद्या अस्मिता आदिक पंचक्लेशतें रहित सर्वत्र पूर्ण औ मेरा उपास्य है औ मैं जो जीव सो अल्पज्ञतादि गुणयुक्त औ अविद्या आदिक पंचक्लेश सहित औ देह संबंधी होनेतें परिच्छिन्न औ ताका उपासक हूं॥ इस असंभवकरि ब्रह्म आत्माकी एकतारूप उक्त वेदांतका प्रमेय मेरी बुद्धि (अकल) में आवता नहीं॥ यातें "ब्रह्म औ आत्माकी एकता

सत्य है किंवा तिनका भेद सत्य है" इस आकारवा
ला केवल प्रमेयगत संशय होवै। तो तुजकूं रज्जु
सर्प। शुक्ति रजत। दर्पणगत नगर प्रतिबिंब इ
त्यादि दृष्टांतरूप॥ औ भेद रहित आत्माविषै ब्र
ह्मका भेद है। किंवा भेदसहित आत्माविषै ब्रह्म
का भेद है॥ औ नाम जाति आदिक द्वैतरूप
विकल्पसैं रहित आत्माविषै विकल्प है। किंवा
विकल्पसहित विषै विकल्प है? दोनूं स्थलमैं प्रथ
मपक्षविषै व्याघात दोष है औ द्वितीयपक्षवि
षै आत्माश्रय। अन्योन्याश्रय। चक्रिका औअ
नवस्था। आदिक दोष होवैं है। इत्यादि भेदकी
बाधक युक्तियांसैं औ घटाकाश अरु महाका-
शका स्वरूपसैं सदा अभेद है। तैसैं निरुपाधि-
क ब्रह्म आत्माका स्वरूपसैं सदा अभेद है॥ इ
त्यादि अभेदकी साधक युक्तियांसैं अद्वैत ब्रह्म
का (ब्रह्मात्माके अभेदका) चिंतनरूप मनन-
कर्तव्य है॥ औ जो तुजकूं उक्त दोनूं प्रकारके सं
शय होवैं तो तुजकूं उक्त प्रकारके श्रवण औ म
नन दोनूं कर्तव्य हैं॥ औ जो तुजकूं किसी प्रका
रका संशय नहीं होवै किंतु ज्ञानतैं पूर्व सगुण
ब्रह्मकी पूर्ण उपासनातैं जन्य चित्तकी एकाग्रता
के अभावतैं। "मैं जीव हूं। ब्रह्मका औ मेरा भेद

सत्य है। देहादि जगत् सत्य है" इस आकारवाली क्षण क्षणविषे फुरनेवाली बुद्धिरूप केवल विपरीत भावना (रज्जुविषे सर्पके निश्चयकी न्याई-आत्माके यथार्थ स्वरूपतें विपरीत निश्चय) होवै। तो तुजकूं विजातीय प्रत्यय (अनात्माकार वृत्ति) नके तिरस्कारपूर्वक सजातीय प्रत्यय-(आत्माकार वृत्ति) नकी स्थितिरूप निदिध्यासन (सविकल्प समाधि) कर्तव्य है॥ औ जो तुजकूं उभय प्रकारका संशय औ विपरीत भावना होवै। तो तुजकूं उक्त श्रवण मनन औ निदिध्यासन तीनों कर्तव्य हैं॥ तिन अंजनसें नेत्र-रोगकी निवृत्तिद्वारा सूर्यके साक्षात्कारकी न्याई तिन श्रवणादिक साधनके किये निदिध्यासनकी परिपाक अवस्थारूप ध्याता औ ध्यानका विसरण होयके अद्वितीय स्वप्रकाश प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मरूप ध्येयाकार वृत्तिकी स्थितिमय क्षणिक समाधिरूप साक्षात्कार (दृढ अपरोक्ष-ज्ञान) होवेगा॥ तातें तिसीहिं क्षणविषे कार्यसहित अविद्याकी निवृत्ति (त्रिकाल अभाव-निश्चयरूप बाध) औ परमानंदरूप ब्रह्मका आविर्भावरूप जीवन्मोक्ष होवैगा॥ यातें अब तूं
श्रवण मनन अरु ध्यानकरिके उदित भये

बोधकूं दृढ कर ॥ पीछे तेरे उत्तम प्रारब्ध हो वैंगे तो जीवन्मुक्तिके विलक्षण आनंदके अनुभव अर्थ विद्वत्सन्यासरूप निवृत्तिके स्वीकारपूर्वक निर्विकल्प समाधिका अधिक अभ्यास होवैगा ॥ औ जो तेरे मध्यम प्रारब्ध होवैंगे तो के। स्नान संध्या। देवपूजा। संतसेवा। गुरुभक्ति। शास्त्राध्ययन। इत्यादि शास्त्रोक्त व्यवहार होवैंगा ॥ औ जो तेरा कनिष्ठ प्रारब्ध होवैगा तो तेरा खेति। वणज। नोकरि। कुटुंबपालन। राज्यपालन इत्यादि क्लेशरूप कनिष्ट लौकिक व्यवहार होवैगा ॥ परंतु मृगजलकी प्रतीतिसें पृथिवीकी आर्द्रताके अभावकी न्याई बाध भये प्रपंचकी अनुवृत्ति (पीछे प्रतीति) करि देहपात पर्यंत प्रारब्धके अनुसार प्रतीत भये इन व्यवहारोसें तेरेकूं कछु हानि औ लाभ नहीं है॥ औ हे शिष्य! दृढ बोधतें पूर्व तूं भेदवादी औ उदरंभर पामर पुरुषनके संगका अरु स्त्री औ स्त्रियनके संगि विषयी पुरुषनके संग निवार कहिये संगका परित्याग कर॥ काहेतें तिनका संग जो है। सो उदय भये मंद बोधका नाशक है ॥ जैसें कोइ राजाकूं पुत्रादि फलकी कामनासें वायुदेवताके यजन करने अर्थ शास्त्रोक्त लक्षण संपन्न श्वेत अ

ज (बकरा) नामक पशु मगायचना था। इस नि-
मित्त कोइ वेदवेत्ता ब्राह्मणकूं भेज्या। सो ब्राह्म-
ण किसी देशांतरमें स्थित अजसमुदायसें एक
शत रौप्य परिमित धन देके शास्त्रोक्त लक्षण-
संपन्न श्वेत पशुकूं लेके राजाके नगरके प्रति आ
वताथा। तब मार्गमें च्यारी चोर मिले। तिनोंनें
पशुद्वारा "यह राजाका पशु है" ऐसें जानिके प
रस्पर संकेत किया॥ पीछे तिस ब्राह्मणसें आगे
एक एक कोशके अंतरायसें वे च्यारी। विलक्ष
ण काष्ठ छेदन आदिक क्रियाविषे तत्पर भये॥
जब एक चोरके पास वह ब्राह्मण आया। तब-
तिसनै कहा कि:- यह पशु अज नहीं। किंतु पा
गल कूकर (श्वान) है। यह सुनिके वाकूं संदेह
भया नहीं॥ पीछे द्वितीय चोरके पास गया। त
ब तिसनें बी तैसें ही कहा। सो सुनिके वाकूं सं-
देह भया॥ पीछे तृतीय चोरके पास गया। तब-
तिसनेंबी तैसें ही कहा। सो सुनिके वाकूं "यह
पशु पागल कूकर हीं है" ऐसा निश्चय भया॥ त
ब रस्सी छोडके चल्या। तौबी स्नेहके वशतें वह
पशु ताके पीछे चलागया॥ फेर सो चतुर्थ चो-
रके पास गया। तब तिसनें बी बहुत भयकारक
वचन उच्चारिके तैसें ही कहा। तब वह ब्राह्मण

भय कंपित होयके तिस पशुके गलेमें बद्ध रस्सीकूं कोइ वृक्षमें बांधिके त्वरासें राजनगरके प्रति जायके पहुंचा। औ तिस पशुकूं वे चारी चोर एकठे होयके लेगये॥ पीछे राजानें सर्व वृत्तांत स्रुनिके शोधनकरिके। फेर सो पशु मगायके। अपना कार्य सिद्ध किया॥ तैसें गुरुरूप राजानें। मोक्षरूप कार्यकी सिद्धिअर्थ। मुमुक्षुरूप ब्राह्मणकूं शास्त्रउक्त सत् चित् आनंद आदिक लक्षणकरि युक्त आत्मारूप पशुके विचारकरिके निश्चय करनेरूप प्राप्तिके निमित्त। शास्त्र औ युक्तिसें विचार करनेरूप देशांतर विषे भेज्या। तब मुमुक्षुरूप ब्राह्मणनें ब्रह्मसें अभिन्न आत्माके-निश्चयरूप तिस पशुकी प्राप्तिकरी॥ परंतु भेदवादी आदिक जनसमुदायरूप चोरनके संगसें देहादि अनात्माविषे अहंभावरूप विपरीत भावनाकूं प्राप्त होवे है॥ ताकूं जो फेर गुरुरूप राजाका संग प्राप्त होवे। तो तिस विपरीत भावनाकी निवृत्ति होजावे। नहीं तो आत्मारूप पशुकूं गमायके जन्म मरण आदिक संसाररूप-पश्चात्तापकूंहीं अनुभव करे है॥ यातें भेदवादी आदिक जनोंका संगरूप कुसंग। दृढबोधसें पूर्व परित्याग करनेकूं योग्य है॥ औ दृढबो-

धके अनंतर बी जीवन्मुक्तिके विशेष स्वरूप अर्थी उक्त जनोंका संग त्यागने योग्य है ॥ सो शास्त्रां तरविषे कहा है:—

श्लोक.

निःसंगता मुक्तिपदं यतीनां । संगादशेषाः प्रभवंति दोषाः ॥ आरूढयोगोऽपि निपात्यतेऽधः । संगेन योगी किमुताल्पसिद्धिः ॥ १ ॥

याका अर्थः— प्रयत्नशील पुरुषनकूं संगका अभाव (जनोंसें रागद्वेषादि रहिततारूप उदासीनता) मुक्तिपद है । औ संगसें सर्व दोष उपजते हैं । जब योगारूढ पुरुष बी संगसें अधःपतनकूं पावता है । तब अल्पसिद्धिवाला पुरुष-(अपक्वयोगी) संगसें अधःपतनकूं पावे । यामें क्या कहना है ! ॥१॥ इस अर्थविषे और अनेक प्रमाण हैं । वे विस्तारके भयसें लिखे नहीं । औ आस्तिक अधिकारीकूं विशेष प्रमाणोंकी अपेक्षा बी नहीं । तातें बी इस ग्रंथविषे कहिं श्रुति आदिकके प्रमाण लिखे नहीं ॥ यातें ज्ञानभये पीछे बी कुसंगसें दूरी रहना योग्य है ॥ औ संग दोषके हरणेहारे साधुजनोंका संग किया हुया फलसें निःसंग भावकूं पावता है ॥ यातें

वासना क्षय आदिक फलका हेतु होनेतें। सो साधुसंग सदा कर्त्तव्य है ॥ यह दोहेके उत्तरार्द्धका अर्थ है ॥ १० ॥

॥ दोहा ॥

अस शिष गुरुउपदेश सुनि। श्रवण मननकरि तास ॥ निदिध्यास साक्षातकरि। कियो बाध अध्यास ॥ ११ ॥

टीकाः— शिष्य अस कहिये इस उक्त प्रकारका गुरुका उपदेश सुनिके तास कहिये तिस सुने अर्थका ग्रंथके विचारपूर्वक वेदांतका अद्वैतविषै तात्पर्य निश्चयरूप **श्रवण** औ जीवब्रह्मके भेदकी बाधक औ अभेदकी साधक श्रुतिअनुसारी प्रत्यक्ष प्रमाणके उपजीवी अनुमान। उपमान (दृष्टांत)। अर्थापत्ति। औ अनुपलब्धि-प्रमाणरूप। जीवब्रह्मके भेदकी बाधक औ अभेदकी साधक युक्तियोसें अद्वैत ब्रह्मका चिंतनरूप **मनन** औ अनात्माकार वृत्तिनके अनात्माविषै मिथ्या बुद्धिसें तिरस्कारपूर्वक ब्रह्मसें अभिन्न आत्माकार वृत्तिनके प्रवाहरूप **निदिध्यासनकूं** मूर्ति आदिकके ध्यानविषै जैसें अश्व आदिकके निरोधकी न्याई चित्तका निरोध

होवै है। तैसैं चित्तके विरोधसैं विना। पथ्याश्रय-
णके प्रसंगसैं औ विचारके प्रसंगसैं क्षुधानिवा-
रक भोजनकी न्याई औ बुद्धिविनोदके हेतु ना-
टक (खेल विशेष) के दर्शनकी न्याई आसना-
दिकके नियमसैं विना चलते फिरते स्वरूपाका-
र वृत्तिके अभ्यास द्वारा करिके। सर्व अनात्मा-
कार वृत्तिनके निरोध हुये ब्रह्माकार भई चित्त-
की वृत्तिविषै अहंप्रत्ययके स्फुरणरूप साक्षा-
त्कारकूं संपादन करिके। अविद्यारूप कारण
के अध्यास सहित अहंकारादिकके अध्यास
रूप बंधका परमार्थसत्तासैं त्रिकाल अभाव-
निश्चय औ व्यावहारिकसत्तासैं मिथ्यात्वनिश्च-
यरूप बाध किया॥ यह हीं सर्व अनर्थकी-
निवृत्ति भई॥ औ अर्थात् परमानंदरूप ब्रह्म
के आविर्भावकूं प्राप्त भया॥ यातें ताकूं जीव-
न्मुक्ति सिद्ध भई॥ ११॥

॥ दोहा॥

तत्त्वंपदको वाच्य अरु। लक्ष्य अ-
र्थको वेश॥ विव लक्ष्यनकी एकता।
कहि अजस उपदेश॥ ८॥

इति श्री बालबोधिनी टीका सहित बालबो-
धे तत्त्वंपद वाच्यार्थ लक्ष्यार्थ कथन पूर्वक तदैक्य

निरूपण नामक अष्टमोपदेशः समाप्तः ॥ ८ ॥

अथ नवमोपदेश प्रारंभः ॥ ९ ॥

॥ शिष्यानुभवोद्गार ग्रहगमन ससन्यास योग स्वीकार कथन पूर्वक ग्रंथोप संहार ॥

७२ अब शिष्य चोवीस (२४) दोहाकरिके अपने अनुभवके उद्गारकूं गुरुके समीप प्रकट करता हुया प्रथम एक दोहाकरि गुरुउपदेशका अनुवाद करै हैः—

॥ शिष्य उवाच ॥
॥ दोहा ॥

तत्वमसि महावाक्यको । कियो मोहि उपदेश ॥ समज्यो अपने रूपकूं। संशय रह्यो नलेश ॥१॥

टीकाः– हे गुरो! आपने मेरेकूं "तत्वमसि" इस महावाक्यका उपदेश किया। तिसकरि मैं अपनें स्वरूपकूं समज्यो कहिये अपरोक्ष निश्चयका विषय किया ॥ तिसविषे लेशमात्रबी संशय रहा नहीं ॥१॥

७३ अब शिष्य अपना अनुभव कहे हैः—

॥ दोहा ॥

मैं पूरन हूं एकरस। रहित रु संग विकार॥ अखंड आनंद रूप मैं। यह दृढ भयो विचार॥२॥

टीकाः– हे गुरो! मैं देश काल औ वस्तुकृत परिच्छेदतें रहित होनेतें पूर्ण (अनंत) हूं। औ मिथ्या उपाधिकृत विलक्षण धर्मोंसें रहित होनेकरि निर्विशेषरूप होनेतें आकाशकी न्याई एकरस हूं। औ सजातीय (जातिवालेसें) संबंध। विजातीय (अन्यजातिवालेसें) संबंध अरु स्वगत (अपने अवयवनसें) संबंधरूप संग। वा देहादिकविषे अहंता औ ग्रहादिकविषे ममतारूप संग अरु जन्म। अस्तिता (पूर्व अविद्यमान हुये पीछे होना) वृद्धि। विपरिणाम। अपक्षय। औ विनाश। ये षट् विकार। इनसें रहित असंग औ निर्विकार (कूटस्थ) हूं। फेर सजातीय विजातीय औ स्वगत भेदसें रहित होनेतें वा माया अविद्या अरु तत्कार्य नाम रूप। इन उपाधिकरि कल्पित जीव ईश्वरका भेद। जीवनका परस्पर भेद। जीवजडका भेद। जडजडका भेद। जड ईश्वरका भेद। इन पंच भेदरूप वस्तुपरिच्छेदसें रहित होनेतें मैं अखंड हूं॥ फेर मैं

आनंदरूप हूं ॥ यह विचार मेरेकूं दृढ भया ॥२॥

७४ ॥ दोहा ॥

श्री गुरु तुम पूरन सकल। अद्वय
आतम राम ॥ आदि अंत मध एक
हो। स्वयंब्रह्म सुखधाम ॥ ३॥

टीका:– शिष्यनें पूर्व जिज्ञासा कालमैं गुरुविषे-अपनें स्वरूपसें भिन्न ईश्वरभाव मान्या था। पीछे ज्ञानकालमैं तिसविषै अपने स्वरूपसें अभिन्न ब्रह्मभाव निश्चय किया है। ताकूं अब प्रगट करै है:– हे श्रीगुरु! आप सर्वत्र पूर्ण अद्वैत आत्माराम हो! फेर आदि अंत अरु मध्यविषै एक हो! फेर आपहीं सुखस्वरूप ब्रह्म हो॥३॥

७५ ॥ दोहा ॥

करना था सो किया सबे। पावन यो
ग्य सो पाय॥ अब करना होना नहीं
कृपा तुमारे पाय ॥ ४ ॥

टीका:– हे गुरो! पूर्व अज्ञान दशाविषे मेरेकूं इस लोकके व्यवहार निमित्त कृषि (खेति) वाणिज्य (वणज) आदिक कर्तव्य था। वा परलोकके निमित्त सकाम कर्म औ सकाम उपासना आदिक कर्तव्य था। औ चित्तकी शुद्धि औ एकाग्रताके निमित्त निष्काम कर्म औ निष्काम उपासनाकू

प कर्तव्य था। औ वेदांत श्रवणादिकके अधिकार अर्थ। विवेक वैराग्य आदिक साधन समूह कर्त व्य था। औ अपरोक्ष ज्ञानकी उत्पत्तिके निमि- त्त गुरुमुखद्वारा "तत्वमसि" आदिक महावाक्य के अर्थका उपदेशरूप अंगी (साध्य) श्रवण क र्तव्य था। औ संशय अरु विपरीत भावनारूप ज्ञानकी अदृढताके हेतु दोषनके निवारण अर्थ श्रवण मनन औ निदिध्यासन कर्तव्य था। औ तत्पदके अर्थविषे परोक्षता भ्रांति औ त्वंपदके अर्थविषे परिच्छिन्नता भ्रांतिके निवारण अर्थ- "ब्रह्म मैं हूं औ मैं ब्रह्म हूं" इस आकारवाला ओ तप्रोत भाव कर्तव्य था। औ मोक्षके निमित्त उक्त साधनोंकरि दृढ अपरोक्ष ज्ञानका संपादन कर्त- व्य था॥ सो सर्व कृत्य। अब दृढ अपरोक्षज्ञान के सिद्ध भये किया॥ वांछित ग्रामकूं प्राप्त भये प थिककूं जैसें मार्गगत अनेक गमनादि प्रयत्न- रूप कर्तव्य रहा नहीं॥ तैसें मेरेकूं ज्ञानकी प्राप्ति सैं इस लोक औ परलोककी इच्छा भंग होयके सर्व साधनोंकी पूर्णता औ मुक्ति सिद्ध भई॥ या तैं अब मोक्षके अर्थ वा ज्ञानके अर्थ कछु कर्त व्य रहा नहीं॥ शास्त्रकी विधिनिषेधरूप आज्ञा सैं जो कछु साधन करिये है। सो कर्तव्य कहिये

है ॥ औ विधिनिषेधके माननेसैं विना अपनी इच्छा तैं जो कछु वेदांत विचारादि साधन करिये है। सो कर्तव्य नहीं है ॥ यातें अब विधिनिषेधरूप आज्ञा के अंगीकार विना स्वइच्छासैं ब्रह्मविचार आदिक जो कछु शास्त्रोक्त आचरण मैं करूंगा। सो कर्तव्य नहीं है ॥ यातें मैंनें जो करना था। सो सर्व किया। याहीतें मैं कृतकृत्य भया हूं ॥ औ पूर्व ऐहिक सुख। किंवा पारलौकिक सुख। किंवा चित्तकी शुद्धि वा एकाग्रतारूप अर्थ वा दृढ अपरोक्ष बोधरूप अर्थ वा संचित क्रियमाण कर्म अरु जन्म आदिक कार्यसहित अविद्याकी निवृत्ति औ परमानंदरूप ब्रह्मकी प्राप्तिरूप अर्थ। मेरेकूं पावने योग्य था। सो सर्व अब ज्ञानकी प्राप्तिसैं पाया। यातें अब मेरेकूं इष्ट ग्रामकूं प्राप्त भये पुरुषकी न्याई पावने योग्य कछु रहा नहीं ॥ याहीतें मैं प्राप्त प्राप्य (कृतार्थ) भया हूं ॥ यातें तुमारे पाय (चरण) की कृपासैं अब मेरेकूं कछु साधन करना नहीं है। औ कोइ देवतारूपसैं वा भगवत् पार्षद आदिकरूपसैं वा नित्य प्राप्त भये ब्रह्मरूपसैं वा किसी अन्यरूपसैं कछु होना नहीं है ॥ ४ ॥

७८ उक्त रीतिसैं कृतकृत्यताकरि औ प्राप्य-

प्राप्यताकरि तृप्त हुवा विद्वान शिष्य। अपने मनसैं ऐसैं (आगे कहनेके प्रकारसैं) मानता- है। औ तैसैंही गुरुके पास वचनद्वारा निवेदन करे है:—

॥ दोहा ॥

धन्य धन्य मैं ज्ञानतैं। ब्रह्मानंद सुभान॥ संसारिक सुख दर्शिविन।
धन्य गए अज्ञान ॥ ५॥
धन्य गये कर्तव्यतैं। प्राप्य सिद्धितैं धन्य ॥ अनुपम तृप्ती आपतैं।
वार वार मैं धन्य ॥ ६॥
अहो पुण्य द्रढ फलित भौ। इस संपत्ति हम अहो॥ अहो शास्त्र गुरु
ज्ञान अरु। ब्रह्मानंद सु अहो॥७॥

टीकाः— हे गुरो! जातैं मैं अपने आत्माकूं नाम जाति आदिकनके ज्ञानकी न्याई अनायाससैं सदा अपरोक्ष जानता हूं। यातैं तिस ज्ञानतैं मैं धन्य (कृतार्थ) हूं। मैं धन्य हूं॥ औ सार्वभौम (सारी पृथ्वीके पति) सैं लेके हिरण्यगर्भरूप ब्रह्मापर्यंत जो संसारका सुख (विषयानंद) है। सो जाका लेश (आभास) है। ऐसा जो ब्रह्मानंद। सो मुजकूं जातैं स्पष्ट भासता है। तातैं तिस

ब्रह्मानंदके स्फुष्ट प्रकारकरि भानसैं मैं धन्य हूं॥ औ उक्त संसार संबंधी स्फरवकूं जातें अब मैं देखता नहीं। यातें तिस सांसारिक स्फरवके अदर्शनतें मैं धन्य हूं॥ औ जैसें पर्वतकी कंदरा (गुहा) विषै स्थित बहुकालके अंधकारकाअन्य यष्टि प्रहारादिक प्रयत्नसें पलायन होता नहीं। तोबी दीपककूं होते तत्काल पलायन (भागना) होवै है॥ तैसें आत्माके अज्ञानका अन्य कर्म उपासना आदिक कोटि उपायनसैंबी पलायन-(नाश) होता नहीं। तोबी "सर्व यह जगत् औ मैं सो ब्रह्म है" इस आकारवाले दृढ अपरोक्ष-ज्ञानसें तत्काल पलायन होवै है॥ सो अज्ञानका पलायन जातें मुजकूं ज्ञानसें सिद्ध भया। यातें तिस अज्ञानके गये मैं धन्य हूं॥ औ विधि निषेधरूप शास्त्रके वचनसें उत्पन्न भई जो विहित (शुभ) कर्मविषै पुण्यरूप अपूर्व द्वारा स्वर्गादि इष्टफलकी प्राप्तिकी संभावनारूप गुण-बुद्धि। औ निषिद्ध कर्मविषै पापरूप अपूर्वद्वारा नरकादि अनिष्ट फलकी प्राप्तिकी संभावनारूप दोष बुद्धि। तिन दोनूं बुद्धिनकरि विहित कर्मविषै प्रवृत्ति औ निषिद्ध कर्मतें निवृत्तिरूप जो क्रिया होवै है। सो कर्तव्य कहिये है॥ औ अपनी इच्छा

तैं जो कछु लौकिक औ वैदिक कर्म करिये है। सो कर्तव्य नहीं॥ उक्त प्रकारका कर्तव्य पूर्व (चतुर्थ दोहेविषै) उक्तरीतिसें पहलेतें निवर्त्त भया है। यातैं तिस गयें कर्तव्यतें मैं धन्य हूं॥ जैसें सर्व पृथ्वीविषै स्थित वापी कूप तडाग आदिकनतैं जितना स्नानपानादिरूप अर्थ (प्रयोजन) सिद्ध होवै है। तितना संपूर्ण अर्थ शुद्धोदक (पिष्टजलके समुद्र) विषै सिद्ध होवै है। औ जैसें दशमुद्रासें लेके पंचाशत् मुद्राके लाभतें जो अधिक अधिक आनंद होवै है। सो सर्व आनंद शत मुद्राके लाभतें सिद्ध होवै है॥ तैसें अनेकविध सकाम कर्म औ उपासना आदिक साधनोंसें जो स्वर्ग वैकुंठ ब्रह्मलोकादि फल प्राप्य हैं। तिनकी प्राप्तितें जो तारतम्य रूप सुख होवै है। वे सर्व सुख ब्रह्मानंदके प्रतिबिंब होनेतें ताके अंतर्भूत हैं। तातैं सो ब्रह्मानंद परम प्राप्य (फल) है॥ सो जातैं मुजकूं अपना आप करिके ब्रह्मानंदके ज्ञानसैंहीं सिद्ध भया॥ यातैं तिस ब्रह्मानंदरूप प्राप्यकी सिद्धितैं मैं धन्य हूं॥ औ राजासैं लेके ब्रह्मलोकपर्यंत स्थित जो विषय हैं। तिनतैं जो तृप्ति (अलंबुद्धि) होवै है। सो तृप्ति अपनेतैं अधिक अधिक अन्य विषयकी इच्छा-

रूप अंकुश सहित होनेतें सांकुश है। औ आनंद रूप ब्रह्मसें अभिन्न आत्माके ज्ञानसें जो तृप्ति (हर्ष) होवे है। सो उक्त अंकुशतें रहित होनेतें निरंकुश है। तातें सो तृप्ति उपमारहित है॥ यातें तिस अनुपम निरंकुश तृप्तिके लाभतें मैं बारंबार धन्य हूं॥ मेरा ज्ञानका हेतु निष्काम कर्मजन्य संस्काररूप पुण्य जातें दृढ फल्या है। यातें सो अहो (अतिशय) है॥ औ इस पुण्यकी संपत्ति (संपादन करने) तें हम अहो (सर्वसें श्रेष्ठ) हैं॥ यह वेदांतशास्त्र अरु गुरु औ ज्ञान कहिये ज्ञान। अहो (निरतिशय) है॥ औ ज्ञानसें आविर्भावकूं पाया जो ब्रह्मानंद। स्रु कहिये सो। अहो (निरवधि) है ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥

७७ अब श्रुतिउक्त हृदयग्रंथि। संशयग्रंथि औ कर्मग्रंथिके भेदतें तीन प्रकारका जो ग्रंथि है। ताकी ज्ञानकरि निवृत्तिकूं शिष्य कहै हैः—

॥ दोहा ॥

हृदय गांठ भेदन भई। सब संशय
भे छीन॥ नासे कर्म सबे जबे। प
रदर्शन प्रवीन ॥ ८ ॥

टीकाः— हे गुरो! जबे कहिये जब (जिसक्षणावि-

पै) मैं परब्रह्मके दर्शन (ज्ञान) विषै प्रवीन (निपुण) भया हूं । तब मेरी बुद्धि औ आत्मा का तादात्म्य अध्यासरूप हृदयग्रंथि कहिये हृदयग्रंथि (चिज्जडग्रंथि औ ताका ज्ञानरूप विपरीत भावना) छेदन (नाश) भई ॥ जातें बुद्धि (अहंकार) औ चिदात्माका तादात्म्य अध्यासरूप कारण निवृत्त भया । तातें " मेरेकूं यह होवै । मेरेकूं यह होवै " इस आकारवाली अरु आशा तृष्णा कामना वांछा लोभ दीनता आदिक भेदवाली इच्छा वृत्तिरूप अनेक कामरूप कार्यभूत हृदयग्रंथियां हैं । वी भी नाशकूं प्राप्त भये । यातें अब अहंकारके धर्मरूप कामादिक वृत्तिनके उदय भये तिनविषे चिदात्माकूं प्रवेश न करिके (तिनकूं चिदात्माका धर्म न मानिके) औ कामादि धर्मवाले अहंकारकूं चिदात्मातें भिन्न मिथ्यारूप देखता हुया । प्रारब्ध दोषतें मैं कोटि वस्तुनकूं इच्छता हूं । तो बी मेरेकूं बाध नहीं है ॥ औ मेरे सर्व संशय क्षीण भये ॥ " यह रज्जु है वा सर्प है ? " इस आकारवाला द्विकोटिक (यथार्थ अयथार्थ दोनूं पक्षनकूं विषय करनेवाला) ज्ञान । संशय कहिये है ॥ सो संशय आत्मगत औ अनात्मगत भेदतें दो प्रकारका-

है॥ तिनमें अनात्मगत संशय रहो अथवा जाओ। उसकी निवृत्तिकी अवश्यकता नहीं है। औ आत्मगत संशय जो है। सो प्रमाणगत औ प्रमेयगत भेदतें दो भांतिका है॥ "उपनिषद्‌रूप-वेदांतके वाक्य द्वैतके प्रतिपादक हैं किंवा अद्वैतके प्रतिपादक हैं किंवा अन्य अर्थके प्रतिपादक हैं" इस आकारवाला। षट्‌लिंगरूप युक्तिसें वेदान्तके तात्पर्य निश्चयरूप श्रवणतें पूर्व संशय होवे है। सो प्रमाणगत संशय है॥ औ वेदांतरूप प्रमाणकरि जानने योग्य जो मोक्ष आदिक पदार्थ हैं। वे सर्व प्रमेय कहिये हैं। तिनके स्वरूपविषै जो संशय। सो प्रमेयगत संशय कहिये है॥ सो प्रमेयगत संशय। विषय भेदतें अनेक प्रकारका है॥ "सर्व अनर्थनिवृत्ति औ परमानंदरूपब्रह्मकी प्राप्ति" यह हीं मोक्ष है किंवा अन्य त्रिविध दुःखनाश वा एकविंशति दुःखका नाश वा पंचक्लेशका नाश वा स्वर्ग वैकुंठादि विषय सुखका लाभ मोक्ष है" इस प्रकारका मोक्षके स्वरूपविषै संशय है। सो फलरूप प्रमेयगत संशय है॥ औ जो सर्व अनर्थनिवृत्ति औ परमानंदकी प्राप्तिरूप मोक्ष माने। तो "तिस मोक्षका साक्षात् साधन कर्म है वा उपासना

है वा ज्ञान है" इत्यादिरूप मोक्षके साधनविषै संशय है। सो साधनरूप प्रमेयगत संशय है ॥ जो मोक्षका साधन अभेद ज्ञानहीं माने। तो "तिस अपरोक्ष ज्ञानका मुख्य (साक्षात्) अंतरंग साधन कर्म अरु उपासना है वा विवेकादिक च्यारी हैं वा श्रवणादि तीन हैं वा पदार्थशोधन है वा महावाक्यका उपदेश है। औ ज्ञानके बहिरंग साधन। श्रवणादि हैं वा विवेकादिक हैं वा कर्मादिक हैं" इत्यादिरूप ज्ञानके साधनोंके निर्णयविषै संशय है। सो साधनरूप प्रमेयगत संशय है ॥ जो अपरोक्ष ज्ञानका मुख्य (साक्षात्) अंतरंग साधन महावाक्यका उपदेश माने। औ विवेकादि अरु अमुख्य अंतरंग साधन माने औ यज्ञादि कर्म बहिरंग-साधन माने तो "तिस ज्ञानका विषय भेद है वा अभेद है॥ अभेद है। तौ बी आत्मा औ ब्रह्मका अभेद है किंवा अंतःकरण विशिष्ट चेतनरूप जीवका औ विराट् वा हिरण्यगर्भ वा अंतर्यामीरूप ईश्वरका अभेद है" इत्यादिरूप ज्ञानके विषयविषै संशय है। सो बी प्रमेयगत संशय है॥ जो आत्मा औ ब्रह्मका अभेद हीं ज्ञानका विषय मानै। तो "उक्त आत्मा स्थू

लदेहसें भिन्न है वा अभिन्न है? भिन्न है तौ बी-सो जड है वा चेतन है वा जड चेतन उभयरूप है? चेतन है। तौबी सो कर्ता भोक्ता है वा अकर्ता अभोक्ता है? अकर्ता अभोक्ता है। तौ बी सो देहादिकविषे अहंता ममतारूप संगवाला है वा असंग है? असंग है। तौ बी सो अणुपरिमाण (बालके हजारवें भाग जैसा सूक्ष्म) है वा मध्यम परिमाण (देह जितना) है वा महत् परिमाण (परिपूर्ण) है? महत् परिमाणवाला है तौ बी ताका तत्पदके अर्थसें भेद है किंवा अभेद है" इत्यादिरूप त्वंपदार्थविषे संशय है। सोबी प्रमेयगत संशय है॥ जो उक्त आत्मा तत्पदके अर्थसें अभिन्न है। तौ बी सो आत्मा तत्पदके वाच्यार्थरूप ईश्वरसें अभिन्न है किंवा तिस ईश्वरभावके अधिष्ठान शुद्धब्रह्मरूप तत्पदके लक्ष्यार्थसें अभिन्न है? लक्ष्यार्थसें अभिन्न है तौ बी जगत्का कारण प्रधानादि है वा तत्पदका-वाच्यार्थरूप ईश्वर है? जो ईश्वर है। तौ बी-सो ईश्वर। एकदेशवर्ति होनेतें परिच्छिन्न है वा व्यापक है? व्यापक है तौ बी गोलोक आदिक देशविषे लीलाविग्रहधारी हुया व्यापक है किंवा एकरस व्यापक है? जो एकरस व्यापक है तौबी

सो जगत्का उपादान कारण है किंवा निमित्त कारण है? या ऊर्णनाभिकी न्याई औ स्वप्न हेतु साक्षीकी न्याई अभिन्न निमित्तोपादान कारण है? जो अभिन्न निमित्तोपादान कारण है। तौबी सो जीवनके कर्मकी अपेक्षासें रहित हुया सृष्टिका कर्ता होनेकरि विषमकारिता आदिक दोषसहित है किंवा कर्मकी अपेक्षा सहित हुया सृष्टिका कर्ता होनेकरि विषमता औ निर्दयालुतारूप दोषसें रहित है? जो कर्म सापेक्ष कर्ता होनेतें विषमकारिता आदिक दोषरहित है। तौबी सो ईश्वर परमार्थसें मायाशक्ति औ ताके धर्म सर्वज्ञता आदिक औ ताके कर्म सृष्टि आदिककी कल्पनासें सहित है वा रहित है? जो तिनतें रहित है। तौबी सो पूर्व उक्त आत्मासें भिन्न है वा अभिन्न है?" इत्यादिरूप तत्पदार्थ विषे संशय है। सो बी प्रमेयगत संशय है॥ जो सो तत्पदार्थका लक्ष्यार्थ शुद्ध ब्रह्म। त्वंपदके लक्ष्यार्थ आत्मासें अभिन्न है तौबी तिन ब्रह्म-आत्माकी जो एकता है। सो क्या मोक्षकालविषे होनेवाली है। किंवा सर्वदा एकता है? जो सर्वदा एकता है। तौबी सो एकता सच्चिदानंदरूप ऐश्वर्यसें रहित है वा सहित है? जो स

च्चिदानंद ऐश्वर्यसहित है। तौबी वे सत् चित्-
आनंद आदिक गुणरूप हैं किंवा ब्रह्मात्माके
स्वरूप हैं? जो स्वरूप हैं तौबी तिनका परस्प
र भेद कथन होवे है। सो भेद वास्तव है किंवा
कल्पित है" इत्यादि रूप तत्पदार्थसें अभिन्न-
त्वंपदार्थविषे संशय है। सोबी प्रमेयगत संश
य है॥ इस रीतिसें श्रवण औ मननकरि निवृत्त
करने योग्य जो प्रमाणगत औ प्रमेयगत संश-
य हैं। वे सर्व ब्रह्म साक्षात्कारके भये क्षीण हो-
वे हैं॥ यद्यपि उक्त द्विविध संशय श्रवण औ म
ननतें क्षीण होवे हैं। यातें ज्ञानसें तिनकी नि
वृत्ति संभवे नहीं? तथापि श्रवण औ मननसें
निवृत्त भये संशयनकी अविद्यारूप कारणके
सद्भावसें फेर बी उत्पत्ति होवे है। औ ज्ञान भ
ये पीछे अविद्याके नाशतें तिन संशयनकी
फेर उत्पत्ति होवे नहीं। यातें ज्ञानतें बी संशय
की निवृत्ति संभवे है॥ औ मेरे जन्मादि दुःख-
के कारण जो कर्म थे वे सर्व ज्ञान अग्निकरि
नष्ट भये॥ इहां यह भाव हैः— संचित प्रार-
ब्ध औ क्रियमाण (आगामि) भेदतें कर्म तीन-
प्रकारका है॥ जैसें कृषीकार प्रतिवर्ष उत्पन्न भ
ये धान्यकूं खानिविषे संग्रह करे हैं औ तिसमें-

सें भक्षणाके निमित्त स्वल्प धान्य लेके कुशूल (को ठा) मैं रखते हैं ॥ तिस कुशूलमैं स्थित धान्यकूं खाते हैं औ क्षेत्रमैं बी डालते हैं ॥ फेर क्षेत्रविषै उत्पन्न भये धान्यकूं खानिमैं डालते हैं ॥ तैसें जन्मांतरोंके जो क्रियमाणकर्म हैं। वे अंतःकरण उपहित साक्षीनिष्ठ अज्ञानकी आवरणशक्तिरूप खानिमैं स्थित होवै हैं। वे कर्म संचित कहिये हैं औ तिनमैसें समय भेदतें परिपक्व भया जो कोइ कर्म। सो ईश्वरकी इच्छासें इस वर्तमान शरीरका आरंभक हुया स्वजनित सुख दुःखके भोगरूप फलकूं देता है। औ अज्ञानकी विक्षेपशक्तिरूप आश्रयविषै स्थित होवै है ॥ सो कर्म प्रारब्ध कहिये है ॥ औ प्रारब्धकर्मजनित भोगकूं भोगते हुये वर्तमान औ भविष्य भोगके संपादन निमित्त प्रारब्धरूप वा रागद्वेषादि शुभाशुभ वासनारूप संस्कारके बलसें इस वर्तमान देहविषै जो कर्म होवै है औ भ्रमज (अहंकारका साक्षीसें तादात्म्य)। सहज (अहंकारका चिदाभाससें तादात्म्य)। औ कर्मज (अहंकारका स्थूलदेहसें तादात्म्य)। इस भेदतैं अहंकारका तादात्म्य तीन भांतिका है ॥ इनमैंसैं प्रथम जो भ्रमज तादात्म्य है। तिसविषै (ति-

सके आश्रित हुया) जो स्थित होवै है। सो कर्म-क्रियमाण (आगामि) कहिये है॥ उक्त जो तीन प्रकारके कर्म। तिनमेंसें ज्ञानवान्के सर्व संचित कर्मोंका ज्ञानाग्निकरि अपने आश्रय अज्ञानकी आवरणशक्तिके नाशतें नाश होवै है औ प्रारब्ध भोगके समाप्त भये (इस वर्तमान शरीरके अंत भये) विदेहमोक्षके आरंभकालमें स्थूल सूक्ष्म शरीराकारसें परिणामकूं प्राप्त भई औ तत्वज्ञानसें पूर्व (जीवन्मुक्ति दशाविषे) बाधित-(मिथ्यात्व निश्चयरूप बाधकी विषय) भई अज्ञानकी विक्षेपशक्ति (अविद्यालेश) के तत्वज्ञानसें वा मरणसंबंधी मूर्च्छाके हुये तत्वज्ञानके संस्कारसें नाश होनेकरि (तप्तलोहविषे जलबिंदुकी न्याई चेतनविषे लय होनेकरि) ईश्वर संकल्पके विषय भये तदाश्रित प्रारब्धकर्मका नाश-होवै है॥ औ अहंकारका साक्षीचेतनसें तादात्म्य (भेदके होते बी अभेद प्रतीति) रूप भ्रमज (पूर्व पूर्व अध्यासरूप भ्रांतिके संस्कारसें जनित) तादात्म्यरूप हृदय ग्रंथि (पंचक्लेशगत अस्मिता) के नाश भये। तदाश्रित जो ज्ञानतें पूर्व वा उत्तर इस वर्तमान जन्मविषे किये क्रियमाण कर्म हैं। तिनका जलसें निर्लिप्त कमलपत्रकी न्याई

विद्वान्‌कूं लेप होवै नहीं ॥ किंतु विद्वान्‌के शुभ अशुभ कर्मके भक्त औ निंदकजन क्रमतें भागी दार होवे हैं ॥ यातें इहां पूर्व "ज्ञानाग्निकरि सर्व कर्मका नाश होवै है" ऐसें कहा। तहां सर्व कर्मशब्दसें अनंत प्रकारके जन्मांतरकृत अपक्क संचितकर्मोंकाहीं ग्रहण है॥ तातें इस उक्त दोहा विषे "तिस परावर (सर्वोत्कृष्ट ब्रह्म) के देखे (अपरोक्ष किये) हुये इस ज्ञानीका हृदयग्रंथि (अहंग्रंथि) भेदन होवै है औ इसके सर्व संशय छेदन होवै हैं औ इसके सर्व कर्म क्षय होते हैं" इस श्रुतिका अर्थ शिष्यनें कथन किया॥८॥

७८ ॥ दोहा ॥

माया मेघ रुजगत जल। वर्षो हु सर्व
प्रकार॥ हानि लाभ मम नांहि मैं।
चिदाकाश आधार॥९॥

टीकाः- अब शिष्य विद्वानोंकी जीवन्मुक्तिदशा विषे जो स्थिति होवे है। ताकूं अपने चित्तविषे ल्यायके कहता हैः- हे गुरो! ज्ञानसें बाधित भया जो माया रूप मेघ है। सो अपनी विक्षेपशक्तिसें जनित जगत्‌रूप जलकूं सर्वप्रकारसें (जैसें इच्छा होवे तैसें) वर्षोवहु। परंतु जातें मैं इसका आधार कहिये अधिष्ठान

चिदाकाशरूप हूं। यातें इसतें मेरेकूं कछु हानि औ लाभ नहीं है ॥९॥

७९ अब " श्रौत (इस ब्रह्मविषे नाना कछु नहीं है। औ नेति नेति। इत्यादि श्रुतिवाक्यसैं जनित त्रिकाल अभाव निश्चयरूप विद्वान्के चित्तविषे आरूढ)। यौक्तिक (रज्जु सर्प। शुक्ति रजत औ स्वप्न जगत् आदिक दृष्टांतरूप औ अनुमानादिरूप युक्तिसैं जनित वेदांत युक्तिनिपुण पंडितके चित्तविषे आरूढ) औ लौकिक (विचाररहित पामर औ विषयी जनोके चित्तविषे स्वभावसिद्ध) भेदतें जो तीन बोध हैं। तिनकरि यह जगत्रूप कार्यसहित माया। तुच्छा। अनिर्वचनीया (सत् असत्सैं विलक्षण होनेकरि बाध योग्य स्वरूपवान्) औ वास्तवी (सत्या) इस भेदतें तीन प्रकारकी जाननेयोग्य है" इस वाक्यकरि उक्त मायाकी त्रिविधताके-क्रमतें अपने चित्तविषे उदय भये अनुभवकूं शिष्य कहे हैं:—

॥ दोहा ॥

सत्य जगत मिथ्या कियो। स्वप्न समान विचार॥ अबसो असत भयो सतम। सम शशशृंग असार॥१०॥

टीकाः- वेदांतशास्त्रके अभ्यासतें पूर्व सप्तम कहिये अज्ञानरूप कारणसहित जगत् सत्य जान्या था। सो वेदांतशास्त्रके अभ्यासकरि-(श्रवण मननकरि) स्वप्न जगत्के समान विचारिके मिथ्या (अनिर्वचनीय) सिद्ध कियो॥ सो अब अपरोक्ष ज्ञानके भये निषेधमुख श्रुतिके अनुसार शशशृंगसम असार होनेतें असत् (तुच्छ) सिद्ध भया॥ यह अर्थ शास्त्रांतरविषे कहा हैः- पारमार्थिकी। व्यावहारिकी औ प्रातिभासिकी। इस भेदतें तीन भांतिकी जो जगत्की प्रतीति है। तिसविषे "वेदांत शास्त्रके अभ्याससें कार्यसहित मायाविषे जो पूर्व अज्ञानकालमें परमार्थबुद्धि (सत्यताका ज्ञान) है। सो नष्ट होवै है औ इस अनिर्वचनीय होनेतें व्यावहारिक जानी हुई मायाकी कार्य करनेकी समर्थता (अर्थ क्रियाकारिता) की बुद्धि जो है। सो अद्वैत तत्त्वके अपरोक्ष बोधतें नष्ट होवै है औ ज्ञात दर्पणगत प्रतिबिंबके बाधितानुवृत्तिसें प्रतिभासकी न्याई इस कार्यसहित मायाका जो प्रतिभास (देहपात पर्यंत ज्ञानीकूं प्रतीति) है। सो प्रारब्धके नाश होते नष्ट होवै है॥ ऐसें क्रमतें आत्माकी माया (अज्ञान) नाश होवै है" इस शा-

रूपके वचनतें दोहाविषे कहा जो अर्थ। सो प्रतिपादन किया है ॥१०॥

८०

॥ दोहा ॥

नहिं निरोध उत्पत्ति नहिं। बद्ध न साधक नाहिं ॥ नहिं मुमुक्ष अरु मुक्त नहिं। मैं परमारथ आहिं ॥११॥

टीकाः– अब मांडूक्य उपनिषद्की गौडपादाचार्यकृत (कारिका (श्लोक) के अर्थकूं चित्तविषे आरूढ करिके शिष्य परमार्थताकूं कहै हैः– हे गुरो! जगत्का अपने कारण अज्ञानमें तिरोभावरूप निरोध (प्रलय) नहीं है औ स्वउपादान अज्ञानतें आविर्भावरूप उत्पत्ति (सृष्टि) नहीं है। औ बद्ध (संसारी जीव) नहीं है औ साधक (मोक्षके साधनकरि संपन्न) नहीं है। औ मुमुक्ष (बंधतें छूटनेका अर्थी) नहीं है अरु मुक्त (बंधनतें छूट्या) नहीं है॥ याका यह भाव हैः– जातें सर्व यह लौकिक औ वैदिक व्यवहार। कामल दोषकरि युक्त दृष्टिकरि शंखके पीतताकी न्याई औ निद्रा दोषयुक्त दृष्टिकरि स्वप्नकी न्याई अविद्याका (अविद्यायुक्त दृष्टिका) विषय है। यातें उत्पत्ति औ प्रलयके अभा

यतैं बंध आदिक नहीं है। किंतु यह प्रतीयमान-द्वैत मिथ्या है औ आत्माहीं एक परमार्थतैं सत् है। यह परमार्थता (विद्यायुक्त दृष्टिका विषय वास्तव तत्व) है। तातें सो परमार्थरूप मैं हूं। यह मैंनें आपकी कृपासैं निर्णय किया ॥११॥

॥ दोहा ॥

आदि अंत मैं नांहि जो। सो मध नांहि कदाच ॥ यातें मृगजल सम जगत। तीनहुं काल असाच ॥१२॥

टीकाः- अब परस्पर पदार्थनकी विलक्षणताकरि युक्त जाग्रत् विषे दृश्यमान पदार्थनके आदि-औ अंतविषै अभावतैं तिनका मिथ्यापना है। ऐसैं शिष्य गौडपादाचार्यके वाक्यके अनुसार कहै हैः- जैसें जो मृगजल आदिक वस्तु आदिविषै (प्रभातमैं) औ अंतविषै (सायंकालमैं) नहीं है। सो मध्यविषै (मध्याह्नरूप वर्तमान-कालमैं) प्रतीत हुया बी कदाचित् नहीं है। यह लोकविषै निश्चित है॥ तैसैं यह जगत् बी स्वउत्पत्तितैं पूर्व औ निमित्तके नाशतैं स्वनाशके भये वा ज्ञानसैं स्वउपादानके नाशतैं बाधकूं प्राप्त भये पीछे नहीं है। यातें यह जगत् मृगजलके सम तीनकालविषै असाच कहिये मि-

ध्या है ॥१२॥

८२ अब " पुरुष (साभास अंतःकरण विशिष्ट जीव) जब (विचारदशाविषे) यह (स्वप्रकाश होनेतैं नित्य अपरोक्ष ब्रह्मरूप आत्मा) मैं हूं ऐसैं आत्माकूं जानता है। तब किस (भोग्य पदार्थ) कूं इच्छताहुया। किस (भोक्ता) के काम (भोग) अर्थ। स्वभावसैं कामक्रोधादिक औ शांति-आदिक औ तिन दोनूंके संस्काररूप तापकरि युक्त त्रिविध शरीरके पीछे तपायमान होवे" इस पंचदशीके तृप्तिदीपविषे व्याख्यान करी हुई बृहदारण्यक श्रुतिके वचनके अर्थकूं चित्तविषे आरूढ करिके शिष्य कहै हैः-

॥ दोहा ॥

भोग्य रु भोक्ता है मृषा। पुन्य पाप सुख खेद॥ किस इच्छातें कोन हित। वृथा तपों लहि वेद॥१३॥

टीकाः- हे गुरो! जातें आकाशादिक सर्व जगत् कूं असत् हुये भासमान होनेंकरि स्वप्नगजादिककी न्याई मिथ्या होनेतें। ताके अंतर्गत इसलोक औ परलोक संबंधी माला। चंदन स्त्री औ अमृतपान अप्सरा आदिक विषयरूप भोग्य (भोगके साधन) औ जागृत् आदिक अवस्थाके अ

भिमानतें विश्व । तैजस औ प्राज्ञ इस नामकूं प्राप्त भये अंतःकरणविषै चेतनका प्रतिबिंबरूप चिदाभासरूप भोक्ता । ये दोनूं जातें मृषा (मिथ्या) हैं । यातें तिस भोग्यके निमित्त भोक्ताकरि किये पुण्य औ पाप मिथ्या हैं । याहीतें तिन पुण्यपापके फलरूप सुख औ खेद कहिये दुःख । वेभी मृषा (मिथ्या) हैं ॥ यातें मैं वृद्ध कहिये चेतनस्वरूप आत्मा ताकूं लहि कहिये जानिके किस भोग्यकी इच्छातें औ कौन भोक्ताके हित कहिये भोगअर्थ मैं ज्वरवान् शरीरके पीछे वृथा तपों ॥ अर्थात् अपरोक्ष ज्ञानसैं बाधित भये (मिथ्या प्रतीत भये) भोग्य भोक्ता औ भोगके निमित्त होनेवाली प्रबल इच्छाके अभावतें औ भूंजे बीजकी न्याई प्रारब्धजनित बाधित (शिथिल) इच्छाके होनेतें ता इच्छारूप निमित्तसैं मैं नहीं तपोंगा ॥ १३ ॥

८३ अब " अधिष्ठान (शरीर) तथा कर्ता (अंतःकरण) औ भिन्न भिन्न करण (दश इंद्रिय) । औ विविध (अनेक प्रकारकी) भिन्न चेष्टा (पंच प्राण) औ इहां पांचवां देव (प्रेरक ईश्वर वा प्रारब्ध वा इंद्रियनके देवता) है ॥ न्याय (शुभकर्म) वा विपरीत (अशुभकर्म) जो होवै है । तिसके ये

शरीर आदिक पांच हेतु हैं [१] तहां ऐसैं क्रियाके अन्य हेतुनके होते। केवल (अक्रिय) आत्माकूं जो पुरुष अकृतार्थ बुद्धिवाला होनेतें कर्ता देखता है। सो दुर्बुद्धिवाला नहीं देखता है (आत्माकूं यथार्थ नहीं जानता है) [२] औ "शरीर इंद्रिय आदि रूपसें परिणामकूं प्राप्त भये प्रकृति (माया) के सत्वादि गुणोंकरि क्रियमाण सर्व कर्म हैं। तिनकूं अहंकारकरि (अहंकारके तादात्म्यकरि) विमूढ (अन्यथा भावकूं प्राप्त भया) है आत्मा जिसका ऐसा जो पुरुष। सो मैं कर्ता हूं ऐसें मानता है [१] औ "जिस पुरुषकूं शरीर आदिककरि क्रियमाण कर्मविषे। मैं इस कर्मका कर्ता हूं॥ इस रीतिसें अहंकारका भाव नहीं है औ इस शुभ अशुभ कर्मके स्वर्ग-नरकादि रूप फलविषे जिस पुरुषकी बुद्धि। मैं इसके फलका भोक्ता हूं। इस रीतिसें लेपकूं पावती नहीं। सो पुरुष इन लोकनकूं हनन कर्ता हुया बी लोकदृष्टिसें हनन करता है औ शास्त्रदृष्टिसें हनन करता नहीं औ तिसके फलकी प्राप्तिरूप बंधनकूं पावता नहीं [२] इत्यादि आत्माके अकर्ताभाव औ अभोक्ता भावके औ तैसें आत्माके ज्ञानके महात्म्यके प्रतिपादक गीताके

वचन हैं। तिनके अर्थकूं अनुभव गोचर करिके शिष्य कहै है :-

॥ दोहा ॥
मैं अक्रिय निर्लेप हूं। देह यथा प्रा रब्ध ॥ चलो ऊंच रु नीच गति। रहो अंत आरब्ध ॥ १४ ॥

टीका :- मैं शरीर वाणी औ मन कृतक्रियाका अनाश्रय (असंबंधी) होनेतें अक्रिय कहिये अकर्ता हूं ॥ जो क्रियाका आश्रयभूत क्रियावान् होवै। सो कर्ता कहिये है। जैसें पूर्वउक्त शरीर-आदिक सामग्री सहित अंतःकरणरूप कर्ता है ॥ जा तें मैं क्रियाका आश्रयभूत क्रियावान् नहीं। तातें कर्ताबी नहीं ॥ औ जो कर्ता होवै सोई भोक्ता हो वै है। यह लोकविषै प्रसिद्ध है ॥ जैसें अंतःकर ण कर्मका कर्ता है। यातें सो कर्मके फलभूत-स्वपरिणामरूप सुख दुःखका भोक्ता है ॥ यातें मैं पूर्वउक्त रीतिसें कर्मका कर्ता नहीं। यातें ता के फलका भोक्ताबी नहीं ॥ जातें मैं कर्मफलका भोक्ता नहीं। तातें मैं निर्लेप हूं ॥ औ प्रारब्ध कर्मरूप निमित्तसें अज्ञानकी विक्षेपशक्तिक रि रचित लिंगदेह सहित स्थूलदेह जो है। सो जैसें इसका प्रारब्ध होवै तैसें। ऊंच (उत्तम)

गतिसें अरु नीच (अधम) गतिसें पवनक-रि पिप्पलके पत्र वा तृणादिककी न्याई वर्तो ओ आरब्ध अंत रहो कहिये जहां लगी इसका आरब्ध (आरंभक कर्म) है। तहांलगि रहो। तिसतें मुज आत्माकूं कछु लाभ अरु हानि नहीं। यह अर्थ है॥

इहां यह शंका हैः- ज्ञानवान्कूं सर्वज्ञ होनेकरि विधिनिषेधरूप शास्त्रकी आज्ञाके अभावतें जब स्वतंत्रता है। तब ताकूं यथेष्टाचरण (इच्छाके अनुसार वर्तना) प्राप्त होवेगा॥ सो लोकनिंदाका ओ शिष्टनिंदाका ओ अंतःकरणमें स्थित कामादि दोषकी वृद्धि द्वारा चित्तकी बहिर्मुखताका जनक होनेकरि विक्षेपका हेतु होवेगा॥ जीवन्मुक्तिके आनंदका हेतु नहीं॥ यातें इस ज्ञानीकूं "धनकी वृद्धिकूं इच्छनेवाले पुरुषका मूल धन बी नष्ट भया" इस न्यायकरि परमानंदके लाभकी इच्छाकरि ज्ञानविषै प्रवर्त हुये उलटा विक्षेपरूप अनर्थ बढ्या?

या शंकाका यह समाधान हैः- जैसें चक्रवर्ती राजा अपने पुत्रका नाश करे अथवा अपने नगरकूं किंवा देशकूं दग्ध करे अथवा विषका भक्षण करे अथवा स्वकीर्तिके करने-

वाले औ आशीर्वादके देनेवाले औ राज्यकार्य-
के करनेवाले सूत (पौराणिक)। मागध (वंश-
के कहनेवाले)। बंदीजन (शीघ्रकवि) वेदवे-
त्ता विद्वान् औ स्वर्फिकर आदिकनके तांई ध-
नादि पदार्थ देवे नहीं। किंतु तिनकूं उलटा ले-
वै॥ तब तिस कार्यविषै ताकूं स्वतंत्रता है। तौ
भी धर्मका वेत्ता औ लौकिक व्यवहारविषै निपु-
ण होनेतें सो राजा तैसें करता नहीं॥ तैसें-
ज्ञानवान् विधिनिषेधके अभावतें स्वतंत्र हुया
भी जातें सर्वकूं अपना आप जानता है औ शा-
स्त्रउक्त विवेककरि संपन्न है औ बालकविषै-
पिताकी न्याई सर्व लोकनके हितकारविषै रत
है औ सर्व विक्षेप दूरी करिके परमानंदके अ-
नुभवविषै आसक्त है। यातें सो यथेच्छाचर-
ण करता नहीं। किंतु "किसी मंत्रवेत्ता पुरुषकूं
कंटककी शय्यासें भी दुःख होता नहीं तब तिस
कूं पुष्पनकी शय्यासें कहांसें दुःख होवेगा" इ-
स न्यायकरि। लोकसंग्रह अर्थ। उलटा शास्त्र-
उक्त मार्गविषै शरीर वाणी औ मनकूं वर्तावता
है औ अंतरविषै तिसका अभिमान करता नहीं
॥ किंवा वैराग्यादि शुभसाधनके संस्काररूप औ
पूर्वपुण्यके संस्काररूप स्वभावसें भी सो पागल-

वैष्णवकी न्याई वा ब्राह्मणादिकके बालककी न्याई निषिद्ध आचरणविषे वर्तता नहीं। किंतु शुभ आचरणविषेही वर्तता है॥ तहां यह विद्वान्‌के यथेष्टाचरणका निषेधक सयुक्तिक शास्त्रवचन है:-

श्लोक.

अधर्माज्जायतेऽज्ञानं यथेष्टाचरणं ततः॥ धर्मकार्ये कथं तत्स्याद्यत्र धर्मो विनश्यति॥१॥

याका अर्थ:- अशुभाचरणजनित संस्काररूप पापरूप अधर्मतें अज्ञान उत्पन्न होवे है कहिये कार्य अकार्यके भेद ज्ञानरूप विवेकका अभाव होवे है। तातें यथेष्टाचरण होवे है॥ ज्ञानरूप धर्मके कार्यके हुये सो अधर्मका कार्य यथेष्टाचरण कैसें होवेगा। जहां ज्ञानका हेतुरूप धर्म ज्ञानरूप फलके तिरोधाननें विनाशकूं पावता है॥ यातें ज्ञानवान्‌की यथेष्टाचरणविषे प्रवृत्ति होवे नहीं॥ औ अर्जुनकीजो हिंसाप्राय युद्धविषे प्रवृत्ति भई है। सो यथेष्टाचरण नहीं। किंतु सो क्षत्रियनका धर्महीं है॥ इस अर्थविषे और बहुत विचार है। सो ग्रंथविस्तारके भयतें इहां लिख्या नहीं इति॥१६॥

८४ ॥ दोहा ॥

नित्य बोध बाधित जगत् । वाक्य-
ज मतितें भास ॥ भ्रमका नाश जु
कृष्ण हत । अर्जुनतें कुल नास ॥१५॥

टीकाः- यद्यपि नित्यबोधरूप चेतनविषे का
रण सहित जगत् । बाधित ही है कहिये नित्य
निवृत्त ही है । तथापि महावाक्यतें जन्य जो
"मैं ब्रह्म हूं" ऐसी मति कहिये बुद्धि । तातें-
भासमान जो भ्रम (अन्यथा भाव)। ताका
नाश होवे है ॥ जैसें कृष्णकरिके हत कहि-
ये पूर्वही हननकूं प्राप्त भया जो कौरव कुल।
ताका फेर अर्जुनतें बी नाश भया है। तैसें
गुरुकी दृष्टिसें नित्य निवृत्त जगत्की शिष्यकी
ज्ञानरूप दृष्टिसें फेर निवृत्ति होवे है ॥१५॥

८५ ॥ दोहा ॥

जड चेतनको भेद किय । वृथाहि -
भाग त्याग ॥ ज्यों घट मृद त्यों देह
चिद । भयो ग्रहण न त्याग ॥१६॥

टीकाः- मैंनें तत्पदार्थ औ त्वंपदार्थके विवेच-
नकालविषे जीव ब्रह्मकी एकताके विरोधि धर्म
सहित उपाधिरूप वाच्य भागका त्याग औ अवि-
रोधि चेतनरूप वाच्यभागका ग्रहणरूप भाग-

त्याग लक्षणाकरिके जो जडचेतनका भेद कहिये विवेक किया। सो अब जानता हूं कि वृथाहीं किया ॥ जैसें घट मृत्तिका रूप ही है। तैसें जातें यह देह आदिक प्रपंच मेरेकूं चिद्रूपहीं प्रतीत भया है। यातें मुजकूं किसीका ग्रेहण औ किसीका त्याग है नहीं। याहीतें पूर्व जिज्ञासाकालविषे पंचम उपदेश उक्त देह आत्माके भ्रमरूप मुख्य अभेदके निवारण-अर्थ किया जो जड चेतनका विवेक। सो अब जड प्रपंचका बाध करिके अभेद (नित्य निवृत्ति) की प्रतीतितें व्यर्थ किया। ऐसें भासता है यह भाव है ॥१६॥

९६ ॥ दोहा ॥

रहित हान आदानतें। बंध रु मोक्ष विहीन ॥ चिदानंद सत उक्तितें। हीन यही स्थिति कीन ॥ १७ ॥

टीकाः- अब शिष्य। पूर्वउक्त अर्थका संक्षेपतें अनुवाद करिके अपनी स्थितिकूं कहे हैः- निरवयव औ निराकार होनेतें हान कहिये त्याग-औ आदान कहिये ग्रहण इन दोनूंतें रहित औ जन्म मरणादि बंधकूं मिथ्या होनेतें औ आत्माकूं नित्य मुक्त होनेतें बंध अरु मोक्षतें

विहीन कहिये रहित औ जागृत् स्वप्न सुषुप्ति ये तीन अवस्था औ तिन अवस्थावाले सर्व दि. वस औ तिस दिवसवाले चैत्रादिक मास औ- तिस मासवाले प्रभव आदिक संवत्सर औ तिस संवत्सरवाले सत्यादि युग औ तिस युग वाले स्वायंभुवादि मन्वंतर औ तिस मन्वंतर वाले ब्रह्मदिवस औ तिस ब्रह्मदिवसवाले मासा दि सहित परार्ध (ब्रह्माके ५० वर्ष औ तैसें ति- स द्विपरार्धवाले वाराह आदिक कल्प औ तिस कल्पवाले भूत भाविष्य वर्तमानरूप कालविषे आ काशादि आश्रयसहित परस्पर विलक्षण शब्दा दि सर्व विषयनका औ तिस तिस विलक्षण- कालका प्रकाशक स्वयंप्रकाश औ घट मठादि परस्पर भिन्न उपाधिगत "आकाश आकाश" इस एक आकारकरि प्रतीयमान एक आकाश की न्याई शब्दसंवित् स्पर्शसंवित् इत्यादि व्यव हारविषे "संवित् संवित्" इस एक आकारकरि प्रतीयमान संवित् (चेतन ज्ञान) रूप होनेतें औ स्वतादात्म्यकरि प्रकाशक होनेकरि सर्वका सा धक होनेतें जो चित् है औ इन सर्वकालविषे परम प्रेमका विषय होनेतें औ दुःखके संबंधतें रहित होनेतें जो आनंदरूप है औ संवित् (चे-

तन) रूप आत्माकूं एक होनेतें जड वस्तुन करि
ताके जन्म नाशका ज्ञान बनै नहीं औ आप चे
तनकूं दीपककी न्याई स्वसमकालविषे प्रकाश-
क होनेकरि औ स्वउत्पत्ति अरु नाशकालवि
षे आपका अभाव होनेकरि । आत्माकी उत्प-
त्ति अरु नाशका ज्ञान आत्मासें बी बनै नहीं
औ "तिसका प्रकाशक अन्य तिसका अन्य"
इस रीतिसें अनवस्थारूप दोषकी प्राप्तितें आ
त्माका औ ताके जन्मनाशका प्रकाशक अन्य सं
वित्‌रूप आत्मा सिद्ध होता नहीं । औ जड वस्तु
कूं अप्रकाशक होनेतें आत्माके जन्म नाशका-
प्रकाशक जड वस्तु बी सिद्ध होता नहीं । यातें
आत्माके जन्म नाशका अनुभव नहीं है औ श्रु-
ति आदिक प्रमाणसें बी आत्माके जन्म नाश-
का अभाव प्रतिपादन किया है । यातें एक स्व-
प्रकाशरूप होनेतें आत्माका जन्म औ नाश न
हीं है । जातें आत्माका जन्म नाश नहीं है । तातें
प्रागभाव औ प्रध्वंसाभावके अभावतें उक्त चि-
दानंदरूप आत्मा सदा विद्यमान है । जातें आत्मा
सदा विद्यमान है । यातें नित्य है । जातें नित्य है । यातें
आत्मा सत्‌ है ॥ औ उक्तितें हीन कहिये वाणी औ तिस-
करि उपलक्षित मन सहित सर्व इंद्रियनका अविषय है ॥ ऐ

सा जो ब्रह्मसैं अभिन्न आत्मा । सो मेरा स्वरूप है । यही स्थिति कहिये यह निष्ठा कौन कहिये मैंनैं संपादन करी है ॥१७॥

८७ ॥ दोहा ॥

गुरु आगम उपदेशतें । पूर्व दूर नि-
जरूप । सो अब निकट प्रकट पुन ।
तनुमैं आप अनूप ॥१८॥

टीकाः– गुरु औ आगम (शास्त्र) के उपदेशतें पूर्व निजरूप जो ब्रह्म । सो अतिशय दूर प्रतीत होता था ॥ सो अनूप कहिये उपमासैं रहित निजरूप अब गुरुशास्त्रके उपदेशके भये निकट कहिये समीपवर्ति भया ॥ तब सो परोक्ष होवेगा ? यह शंका भई । तहां कहे हैंः– पुन कहिये फेर प्रकट (अपरोक्ष) भया ॥ तौबी सो शरीरसैं बाहिर सन्मुख देशविषै अपरोक्ष हुवा होवेगा ? यह शंका भई । तहां कहे हैंः– तनुमैं कहिये स्वशरीरके भीतर हीं अपरोक्ष भया ॥ काहेतें प्रमाताचेतन (साक्षी) औ विषयचेतन (ब्रह्म) के शरीरके भीतर अंतःकरण देशविषै हीं अभेदके होनेतें औ प्रमाताचेतनका विषयचेतनसैं वृत्तिद्वारा किंवा साक्षात् अभेदरूप अपरोक्षज्ञानके लक्षणके होनेतें शरीरके भीतर हीं ब्रह्मका-

अपरोक्ष ज्ञान कहा । सो समीचीन है ॥ शरीर-के भीतर अपरोक्ष हुया बी इदंवृत्तिके विषय सुख दुःखादिककी न्याई आपसें भिन्न होयके-अपरोक्ष हुया होवैगा ? यह शंका भई । तहां कहै हैंः- अहंवृत्तिका विषय होनेकरि अपना आप होयके अपरोक्ष भया ॥१८॥

८८ ॥ दोहा ॥

ज्ञान सूरके उदयतें । माया निशिको
नाश ॥ चिद जड भेद रु मल भरवं ।
वादी निशिचर भास ॥१९॥
श्रुति रखवारन शयन किय । लीन
चोर कामादि ॥ इंद्रिय तारे तेजहत ।
छीन चंद्र मन मादि ॥ २० ॥

टीकाः- अब दृढ अपरोक्ष ज्ञानका सूर्यके रूप-करि शिष्य वर्णन करे हैंः- निदिध्यासनरूपअरुणोदयके पीछे दृढ अपरोक्ष ज्ञानरूप सूरके कहिये सूर्यके उदयतें माया कहिये स्वअंतः-करण देशविषे स्थित अज्ञानाश । तिसरूप निशी कहिये रात्रि ताको नाश भयो । याहीतें कार्यसहित समष्टि अज्ञानरूप मायाके मि-थ्या भावकी प्रतीतितें अर्थात् ताका बी नाश भया । यह सिद्ध होवे है ॥ औ चिद जो दृष्टा चेतन

औ जड़ जो दृश्य प्रपंच । तिनका " सत् सो सत् हीं है । औ असत् सो असत् हीं है " ऐसा नय-प्रकाशकी न्याई भेद कहिये उत्कृष्ट विवेकरूप प्रभात भया ॥ अरु भास कहिये वर्तमान औ असत्‌वादी रूप निशिचर कहिये पिशाचादिक । सो मुक्त भये कहिये मुमुक्षुं वहकावनके अभावतें वकवादरूप शब्दकूं संहरण करे हैं । परंतु तिनका ज्ञानसें छिपावनका उपाय रहा नहीं ॥ ॥ औ अज्ञानरूप रात्रिमें मुमुक्षुरूप प्रजाके मतांतररूप चोरादिकनसें रक्षण करनेवाले जो श्रुति औ स्मृतिरूप रथवाले थे । तिनोनें शयन किया । अर्थ यह जो फेर ज्ञानकी रक्षाविषे तिनका उपयोग नहीं है ॥ औ अज्ञानरूप रात्रिविषे मनरूप कोषके हिरनेवाले जो कामादिक चोर थे । वे ज्ञानरूप सूर्यके उदय भये लीन भये (छुप गये) ॥ औ अज्ञानरूप रात्रिविषें विषयनमें चलात्काररूसें प्रवर्तिरूप तेजवाले जो इंद्रियरूप तारे (उडुगण) थे । वे ज्ञानके उदय भये तेजहत कहिये निस्तेज भये ॥ औ अज्ञान कालविषे कामादि वृत्तिरूप किरणोंकरि प्रकाशमान औ विषयनविषे रागरूप अमृतकरि पूर्ण होनेतें मा

दि कहिये प्रमादी जो मनरूप चंद्र था। सो ज्ञानरूप सूर्यके उदय भये छीन (क्षीण) कहिये मंद भया ॥ १९ ॥ २० ॥

८९ ॥ दोहा ॥

परसुखनिधि भोक्ता प्रभू। मायाकरि करि भाग ॥ विधिनिषेध कर
भृत्यवत। जीत्यो भागत्याग ॥ २१ ॥

टीकाः- अब ईश्वरसैं जीवका संवाद मनमें ल्यायके शिष्य कहेहैः- ब्रह्मरूप पिता औ मायारूप माताके चिदाभासमय जीव औ ईश्वररूप दोनूं पुत्र हैं। तिनमें ईश्वररूप जो ज्येष्ठपुत्र सो परब्रह्मरूप पिताके सुखरूप राज्यादि धनके निधिका भोक्ता है औ सर्वज्ञतादि रूप मायाके धनकूं स्वाधीन करनेतें प्रभु कहिये ईश्वर (समर्थ) है औ अविवेककरि जीवभावकूं प्राप्त भये मुज आत्माके प्रति पुण्यके फलभूत संसार सुखके साधनरूप मायाकरि कहिये सर्वज्ञतादिरूप ऐश्वर्यरूप मायानिधिकै अंशरूप किंचित् धनसैं विभाग करिके "जो मेरे अर्थ। पत्र पुष्प फल जलकूं भक्तिसैं देवै। सो भक्तिकरि अर्पित वस्तु। मैं अंगीकार करता हूं" इत्यादि वचनोंसैं मेरेनैं भिक्षा मांगता

हुया भृत्यवत् कहिये किंकरकी न्यांई विधि-निषेधरूप शिक्षाका करनेवाला है। सो अब मैंनें आप गुरुरूप वकीलकरिके भागत्याग-लक्षणासैं मेरे निजरूप कूटस्थ (साक्षी) सैं ता के निजरूप ब्रह्मकी एकतारूप न्यायकरिके-जीत्यो कहिये अभेद भावरूप पीतिसें पर-सुखनिधिका भोक्ता होयके स्वाधीन कियो ॥क हूं व्यवहारकालविषे भेदकथनके हुये बी लोक-दृष्टिसैं लज्जावान् ऐसे परस्पर स्नेहवान् स्त्री-पुरुषकी न्यांई अंतरसैं भेद प्रतीति कदाचित् होती नहीं। ताके अभेदकूंहीं क्षुधा भार आदि क दोष रहित भुक्त अन्नकी न्यांई परमानंदका हेतु होनेतें ॥ २१ ॥

९० ॥ दोहा ॥

दासोऽहं यह बुद्धि भइ। हरि सैं पू
र्व अनादि ॥ तिसने करुणा करि ह
री। चोर कर्मके नादि ॥ २२ ॥

टीकाः- जैसें किसीके ग्रहविषे शिलासें ढांपि हुइ निधि होवे। सो निधि सिद्धांजनसैं जानिके। तिस शिलाके दूरी किये प्रकट होवे है। तब ति सकूं दरिद्रता निवृत्त होयके धनाढ्यता प्राप्त हो वे है। परंतु ताकूं विशेष सुख उपभोग होवे-

है॥ तैसें हरि जो परमेश्वर। तामैं मेरेकूं पूर्व अज्ञान दशागत उपासनाकालविषे अनादि कहिये बहुकालकी "दासोहं (मैं दास हूं)" यह बुद्धि भई थी। सो तिस चोरकर्मके नादी कहिये नाद (व्यसन) वाले हरीनें करुणाकरि गुरुशास्त्रका समागम प्राप्त करिके देहाभिमानके सूचक "दाकार" रूप शिलाके दूरी करनेद्वारा हरी कहिये हरण करी॥ जातें अब मेरेकूं अनादिकालकी जीवभावरूप दरिद्रता निवृत्त होयके निजदेहरूप ग्रहमें पूर्व हीं स्थित ब्रह्मभावरूप धनाढ्यता प्राप्त भई। यह बडा लाभ भया। परंतु याका विशेष सुख। मुजकूं ज्ञान भये पीछे ब्रह्मविचारकरि अंतर्मुख स्थितहोनेतें होवैगा॥ २२॥

९१ जैसें नदीविषे डूब्या जो पुरुष ताके निकासनेविषे तीरविषे स्थित हुया उद्धारक (निकासनेवाला तारू) औ उद्धार्य (निकासनेयोग्य डूब्या पुरुष) इन दोनूंका शिक्षक पुरुष। औ उद्धारकपुरुष औ उद्धार्य पुरुष। इन तीनकी कुशलताकी अपेक्षा है॥ औ जैसें त्राजूविषे सुवर्णके परिमाण (तोल) के निमित्त। सुवर्ण। गुंजादि तोलक औ उपरि भागकी शलाका। इन

तीनकी समता होवै । तब रूपणादि वस्तुके प-
रिमाणका निश्चय होवै है ॥ तैसैं दृढ अपरोक्ष
ज्ञानविषै बी शास्त्र । गुरु औ आप (शिष्य)
का अनुभव । इन तीनकी समताकी अपेक्षा है॥
सो इन तीनकी समता मेरेकूं सिद्ध भई । यातैं
मेरा निश्चय दृढ है औ याहीतैं मेरेकूं मुक्तिवि
षै संशय नहीं है ॥ इस अभिप्रायसैं अब शि
ष्य कहै हैः—

॥ दोहा ॥

शास्त्र दृष्टि गुरु वाक्यतैं । उदित रू
अनुभव आप ॥ इनहिं तीन पर
मानतैं । जान्यो अपनो आप ॥ २३॥

टीकाः— शास्त्रदृष्टि औ गुरुवाक्यतैं आप-
कहिये अपना अनुभव कहिये अपरोक्ष ज्ञान
रू कहिये सुंदर प्रकारसैं उदित है। ऐसैं इन तीन
प्रमाणतैं अपनो आप जान्यो ॥ २३॥

१.२ अब जिन हरि गुरु संतकी पूर्वकृत भक्ति
सैं जनित कृपासैं अपरोक्ष ज्ञान प्राप्त भया ।
पीछे बी तिनकी भक्तिके त्यागनेसैं कृतघ्नतारू
प दोष होवै है। तिसकी निवृत्ति अर्थ शिष्य क
हैहैः—

॥ दोहा ॥

हरि गुरु संतनको सदा। देह दृष्टि
मैं दास ॥ जीव दृष्टि तिस अंश हूं।
आत्मदृष्टि सो आस ॥ २४ ॥

टीकाः- हरि गुरु औ संतनका देहदृष्टिसें मैं सदा दास हूं। औ जीवदृष्टिसें तिस कहिये तिन ईश्वररूप माने हुये गुरु आदिकका मैं अंश हूं। औ आत्मदृष्टिसें सो आस कहिये मैं हूं ॥ २४ ॥

९३ ॥ ग्रंथकारकी उक्ति ॥

॥ दोहा ॥

भयो कृतारथ शिष्य इम। अपनो
आप पिछानि ॥ गुरुपदपें शिर ना
यकें। गयो गेह गुरुबानि ॥ २५ ॥

टीकाः- पूर्वउक्त जो शिष्य। सो अपनो आप पिछानिके। कृतार्थ कहिये कृतकृत्य भया॥ अर्थ यह जो सर्व कर्तव्यके अभावकूं प्राप्त भया॥ पीछे गुरुके चरणकमलके तांई शिर नमायके गुरुके आज्ञारूप वचनतें गृहकूं गया ॥ २५ ॥

९४ ॥ दोहा ॥

कबहुंक उत्तम भाग्यतें। भयो तीव्र

वैराग ॥ जीवन्मुक्ति स्फूर्ति हि-
त। किया गृहादि त्याग ॥ २६ ॥

टीकाः- कदाचित् काकतालीन्यायकरि नि
ष्काम पुण्य (अशुक्ल कृष्णारूप योगीके कर्म) म
य उत्तम प्रारब्ध कर्मके उदयतें। उक्त शिष्य-
रूप ज्ञानीके चित्तमें हुए भोगनविषे दृढमिथ्या
त्व बुद्धिसें तीव्र (तीव्रतर) वैराग्य भया ।
तातें जीवन्मुक्तिके विलक्षण सुखकी स्फूर्ति-
के हित कहिये सम्यक् भोगअर्थ। गृहादिक-
का त्यागरूप सन्यास आश्रमका स्वीकार कि
या ॥ इहां यह रहस्य हैः- उत्तम। मध्यम। क
निष्ठ। अधमतर औ अधमतम। इस भेदतें ।
प्रारब्धकर्मरूप जो भाग्य। सो पांच प्रकारका
है ॥ सदा निवृत्तिका हेतु जो प्रारब्ध। सो उत्त
म है। जैसें शुकदेव वामदेव औ सनकादिक
आदिकनका प्रारब्ध है। सो जन्मसें लेके शरी
रकी स्थिति पर्यंत निवृत्तिका हेतु है। यातें सो
उत्तम है ॥ औ प्रथम प्रवृत्तिका हेतु औ पीछे
निवृत्तिका हेतु जो प्रारब्ध। सो मध्यम है ।
जैसें याज्ञवल्क्य आदिकनका प्रारब्ध है। सो
प्रथम गृहस्थाश्रमके स्वीकाररूप प्रवृत्तिका
हेतु भया है औ पीछे तीव्र वैराग्यपूर्वक विद्व

संन्यासके स्वीकाररूप निवृत्तिका हेतु भया है।
यातें सो मध्यम है॥ औ सदा प्रवृत्तिका हेतु
जो प्रारब्ध। सो कनिष्ठ है। जैसें जनकादिक-
का प्रारब्ध है। सो सदा राज्यभोगके स्वीकाररू
प प्रवृत्तिका हेतु है। यातें कनिष्ठ है॥ औ प्रथम
निवृत्तिका हेतु औ पीछे प्रवृत्तिका हेतु जो प्रार
ब्ध है। सो अधमतर है। जैसें शिखध्वज अल
र्क रहूगण औ प्रियव्रत आदिकका प्रारब्ध है।
सो प्रथम वैराग्यपूर्वक निवृत्तिका हेतु है। औ
पीछे भोग इच्छापूर्वक राज्यादि स्वीकाररूप प्र
वृत्तिका हेतु है। यातें अधमतर है॥ औ यथे-
च्छाचार यथेच्छावाद औ यथेच्छाभक्षणरूप
प्रमादका हेतु जो प्रारब्ध। सो अधमतम है। जै
सें कलिके प्रभावकरि कोइ आधुनिक अनधि
कारी हुये वेदांतश्रवणमें प्रवृत्तिवाले वाचकचंचु
ज्ञानिनका है। सो यथेच्छाचरण यथेच्छाकथ
न औ यथेच्छाभक्षणरूप प्रमादके स्वीकार-
का हेतु है। यातें अधमतम है॥ तिनमें उक्त-
ज्ञानी पुरुषका प्रारब्धरूप भाग्य। यद्यपि पूर्व
गृहस्थाश्रमके स्वीकाररूप प्रवृत्तिका औ पीछे-
तीव्र वैराग्यपूर्वक गृहादिक परिग्रहके त्याग-
रूप निवृत्तिका हेतु होनेतें याज्ञवल्क्य आदि-

ककी न्याईं मध्यम है । तथापि ताकूं तीव्र वैरा-
ग्यका हेतु निष्काम पुण्यरूप होनेतें उत्तम क
ह्या है ॥ इहां ग्रहादिकका त्याग कह्या । तामें ग्र
ह शब्दकरिके तिसकरि उपलक्षित क्षेत्र पशु
दास दासी धन धान्य आदिक समृद्धिरूप जो
वित्त औ तदुपयोगी खेती वाणिज्य आदिक
विषे प्रवृत्तिरूप ताकी एषणा (इच्छा) का ग्र
हण करना ॥ औ आदिशब्द करिके पुत्र एषणा
अरु तदुपयोगी स्त्रीविवाह आदिककी एषणा-
का औ लोकनके स्तुतिकी योग्यता औ निंदाकी
अयोग्यताके संपादनकी इच्छारूप लोक एषणा
अरु तदुपयोगी यज्ञादि कर्मविषे प्रवृत्तिकी ए-
षणा। इनका ग्रहण करना ॥ यातें इन तीन ए
षणातें उत्थानरूप संन्यास ही इहां गृहादिकके त्या
ग शब्दका अर्थ है ॥ सो संन्यास । हंस औ परम
हंस भेदतें दो भांतिका है ॥ तिनमें तीव्र वैराग्यक
रि किया हंस संन्यास जो है । सो कुटीचक -
औ बहूदक भेदतें दो भांतिका है ॥ यात्रा (ती-
र्थाटन) की अशक्तितें कहीं कुटी लगायके जो स्थि
त होना। सो कुटीचक है ॥ औ संन्यास आश्रम-
के कर्मकूं करता हुवा जो तीर्थाटन करना। सो
बहूदक है ॥ औ परमहंस संन्यास भी विविदि-

षा अरु विद्वत्के भेदतें दो भांतिका है॥ ज्ञानतें-पूर्व दोषदृष्टिजन्य तीव्रतर वैराग्यतें जिज्ञासुकरि जो किया होवे। सो विविदिषा है॥ औ ज्ञानके अनंतर दोषदृष्टि औ मिथ्यात्व दृष्टिजन्य तीव्रतर वैराग्यतें विद्वान्करि जो किया होवे। सो विद्वत्संन्यास है॥ तिनमेंसें इहां विद्वत्का ग्रहण है॥ २६॥

१५ ॥ दोहा ॥

राजयोग हित हठकरी। राजयोग
पुन साधि॥ अष्ट अंगयुत सिद्ध-
किय। निर्विकल्प स्फ समाधि॥२७

टीकाः- पीछे तिस ज्ञानीनें मन निरोधरूप-राजयोगके अर्थ। प्रथम प्राणनिरोधरूप हठयोग किया। सो हठयोग करिके पुन कहिये फेर। राजयोग साधि कहिये सिद्ध करिके। ता राजयोगका स्वरूप कहे हैं:- अष्ट अंग-सहित निर्विकल्प रूप स्फ कहिये श्रेष्ठ ऐसा समाधि सिद्ध किया॥

तिस साधनरूप हठयोग औ ताके फलरूप राजयोगका संक्षेपतें प्रकार। शास्त्र औ गुरु-की कृपातें हम लिखे हैं॥ ॥ तिनमें हठयोग-का प्रकार यह है:- नेति। धोति। गजक्रिया।

नौलि । वस्ती । त्राटक । कपालभाति (भस्त्रा) । वज्रोली । औ संखप्रक्षालन । औ विपरीत करणी। इन क्रियाकूं रोग औ मेद कफ पित्त आदिक मलकी निवृत्तिद्वारा । शरीरके कोष्टकके शोधन-अर्थ प्रथम सिद्ध करै ॥ तिनमैं नेति आदिक षट्क्रियाका तो प्रथमहीं उपयोग है ॥ परंतु जाके शरीरमें मेद औ कफकी अधिकता नहीं है। ताकूं तो तिन क्रियाविनाहीं केवल प्राणायामके अभ्याससैंहीं शरीरशोधन औ नाडीशोधन होवै है ॥ औ केइक तो जलमैं भिगोइ हरीतकीका भक्षण करिके रेचसैं शरीरशुद्धि करते हुये बिंदुदर्शनादि अभ्यासपूर्वक प्राणायामके अभ्यासका प्रारंभ करते हैं। वे बी सिद्धिकूं पावते हैं ॥ औ केइक जो जालंधरबंदके अभ्यासमात्रकरि प्राणके ऊर्द्धगमनरूप सिद्धिकूं पावते हैं ॥ औ वीर्यस्थानके साधनअर्थ। वज्रोली क्रियाकी अपेक्षा है ॥ औ समाधिकालमैं शरीरमें अवशेष रहे मलकी निवृत्तिकरि बहुकालपर्यंत समाधिकी स्थितिअर्थ। शंखप्रक्षालन क्रियाकी अपेक्षा है ॥ औ कुंभककी वृद्धिअर्थ। कपालभातिकी अपेक्षा है ॥ औ बहुत अन्नके पचावनेवाली विपरीत करणीका मस्तकसैं

प्रगलित अमृततुल्य रसके पानअर्थ अपेक्षा
है॥ औ प्राणायामविषै उपयोगी मूलबंध।उड्डी
यानबंध। जालंधरबंध औ जिव्हाबंध। इनकूं-
बी सिद्धपद्म मत्स्येंद्र पश्चिमतान मयूर इत्या
दि आसन औ मुद्रा आदिकके अभ्याससें-
सिद्ध करै॥ औ कुत्सित अन्न। अग्निसंग। स्त्री
संग औ मार्गविषै गमन। इन च्यारी वस्तुनका
हठयोगी त्याग करै॥ औ प्राकार (किल्ला) करिके
परिवेष्टित औ कूपसहित मंदिरके मध्यगत गुह-
विषै योगी वास करै॥ औ यम नियम अरु पूर्व
उक्त आसन। इन तीनकी सिद्धिपूर्वक प्राणायाम
करै॥ अगर्भ औ सगर्भ भेदतें प्राणायाम दो
प्रकारका है॥ प्रणवके उच्चारणसें रहित जो प्रा
णायाम। सो अगर्भ है। औ प्रणवके उच्चारण-
करि सहित जो प्राणायाम। सो सगर्भ है॥ ति
नमें सगर्भ प्राणायाम श्रेष्ठ है। यातें ताहीकूं क
रै॥ फेर सो प्राणायाम। पूरक कुंभक औ रे-
चक भेदतें तीन प्रकारका है॥ प्रथम चंद्र औ पी
छे सूर्यकी नाडीसें जो श्वासका पूरन करना।
सो पूरक कहिये है। औ पूरन किये श्वासका
जो रोकना। सो कुंभक कहिये है औ रोकेहुये
श्वासका जो धैर्यसें छोडना। सो रेचक कहिये

है ॥ तिनमैं मात्राविशेषणके नियमकी बी अपेक्षा है ॥ प्रणवोच्चारणादि कालनके मध्य। एककै काळका नाम मात्रा है ॥ जितनी मात्राकरि पूरक करै तिनतें चतुर्गुण मात्राकरि कुंभक करै औ पूरककी मात्रातें द्विगुण मात्राकरि रेचक करै ॥ प्रातःकाल मध्यान्हकाल सायंकाल औ मध्यरात्रिकाल। इन च्यारी कालविषे क्रमतें अधिक अधिक प्राणायाम करै ॥ ऐसें धैर्यतें अभ्यासकरते करते हुये जब उत्तम प्राणायामकूं प्राप्त होवै। तब प्रातःकालविषे साठ प्राणायाम करै औ मध्यान्हकालविषे चालीस प्राणायाम करै औ सायंकाल अरु मध्यरात्रिकालविषे वीस वीस प्राणायाम करै॥ अथवा सर्वकाल विषे समान (८०) हीं प्राणायाम करै ॥ परंतु प्रथम पक्षकी रीति उत्तम है ॥ ऐसैं पूर्ण अभ्यासके हुये। जब ऊर्ध्वगमनकूं पायके। फेर अधःगमन करिके। पश्चिमद्वारसें प्राण ऊर्ध्वगमन करै। तब मूलबंध जालंदरबंध औ जिव्हाबंधकूं दृढ करै ॥ औ लंबकारूप कपाटकूं लगावै ॥ इस रीतिसें जब पूर्ण अभ्यास होवै। तब समाधि सिद्ध होवे है ॥ फेर अभ्यासके पाटवतें मननिरोधरूप राजयोग सहज सिद्ध होवै है॥ परंतु इसविषे समाधिसिद्ध गुरुकी सन्निधिकी अपे

क्षा है॥ गुरुविना स्वतंत्र जो यह योग करे। ताकूं रोगजन्य वा मृत्युजनक दुःख होवै है॥ तैसें श्रद्धायुक्त कुशल साधककी बी अपेक्षा है। काहेतें तिसविना निर्वाह होवै नहीं॥ औ जिसका चित्त। शांत बलीवर्दकी न्याई। अचंचल औ स्वाधीन है। तिसकूं तो श्रीअपरोक्षानुभूति उक्त प्रकारकरि प्रतिदिन घटिका। मुहूर्त। प्रहर पर्यंत ब्रह्माभ्यास मात्रसें हीं निर्विकल्प समाधिरूप राजयोगकी सिद्धि होवै है॥ औ जिसका चित्त। उन्मत्त बलीवर्दकी न्याई। अतिचंचल औ अस्वाधीन है। तिसकूं तो दंडसें बलकरि उक्त बलीवर्दके ग्रहविषै प्रवेशकी न्याई राजयोगरूप ग्रहविषै बलसें प्रवेश करनेअर्थ। प्राणनिरोधरूप हठयोगकी अपेक्षा है॥ यातें श्रीआदिनाथ (श्री महादेव) मत्स्येंद्रनाथ औ गोरखनाथ आदिकनें। स्वतंत्र हठयोग प्रकट किया है॥ यद्यपि आधुनिक कालविषै अधिकारिनके अभावतें औ संप्रदायके उच्छेदसें। यह हठयोग सांगोपांग दुर्लभ है॥ तथापि कोइ विरक्त पुरुषकूं हीं एक एक अंगकी सिद्धि होवै है॥ यह संक्षेपतें हठयोगका प्रकार कह्या॥ याकी विशेष रीति। हठप्रदीपिका। योगचिंतामणि। गोरक्षशतक। याज्ञवल्क्य। दत्तात्रेय योग। हठर-

लावलि। रुद्रयामल औ पद्मपुराणांतर्गत पंच अ-
ध्यायरूप कपिलगीता। इत्यादि संस्कृत ग्रंथनवि
षै औ सुंदरदासकृत ज्ञानसमुद्र औ तत्कृत-
सर्वांग योग। इत्यादि भाषा ग्रंथनविषै बी लिखी है
॥जाकूं जिज्ञासा होवै सो तहां देखै॥

अब राजयोगकूं कहै हैं:- यम। नियम।
आसन। प्राणायाम। प्रत्याहार। धारणा। ध्यान
औ सविकल्प समाधि। इन अष्ट अंगोंकी सिद्धि-
के अनंतर लय। विक्षेप। कषाय औ रसास्वाद।
इन च्यारी विघ्नोंकूं दूरि करिके। व्युत्थान संस्का
रका तिरस्कार औ निरोध संस्कारकी प्रकटता पू
र्वक। त्रिपुटीके भानसें रहित ब्रह्माकार वृत्तिकी
स्थितिरूप निर्विकल्प समाधिका नाम राजयोग
है॥ याका विशेष निरूपण। पतंजलिकृत योग-
सूत्र। श्रीमद्भगवद्गीता औ श्रीयोगवासिष्ठ। इत्या
दि संस्कृत ग्रंथनविषै औ विचारसागर। तथा अ
स्मत्कृत श्रीपंचदशीकी तत्वप्रकाशिका नामक
टीकाका षष्ठ प्रकरण। इत्यादि प्राकृत ग्रंथनविषै
बी किया है। जाकूं जिज्ञासा होवै सो तहां देखै॥
यद्यपि आधुनिक मनुष्यनकूं यह राजयोग अ-
ति दुर्लभ है। तथापि किसी एक पुण्यपुंजके प
रिपाकवाले योगभ्रष्टकूं कछुक होवै है॥ इसके

अतिशय अभ्याससैं क्रमकरि पंचम षष्ठ औ सप्तम भूमिकाकी प्राप्ति होवे है ॥ यद्यपि जीवन्मुक्ति औ विदेह मुक्ति तो ब्रह्म औ आत्माकी एकताके निश्चयरूप तत्वज्ञानसैंहीं होवे है ॥ यातैं तत्वज्ञानके निमित्त वा विदेहमुक्तिके निमित्त विद्वान्कूं कछु कर्तव्य नहीं है ॥ तथापि वैराग्य-बोध औ उपशम। इन तीनकी एकत्र स्थितिका हेतु जो यह अभ्यास कहा। सो जीवन्मुक्तिके विलक्षण आनंदके इच्छु अकृतोपासन (ज्ञानसैं पूर्व सगुण निर्गुणरूप उपासनासैं रहित) विद्वान्कूं कर्तव्य बुद्धिसैं विनाहीं स्वइच्छातैं करने योग्य है॥ जीवन्मुक्ति औ विदेह मुक्तिका लक्षण श्रीयोगवासिष्टमैं विस्तारसैं लिख्या है औ विचारसागरके सप्तम तरंगमैं लिख्या है॥ औ हमने प्रश्नोत्तररूप विचारचंद्रोदयविषे बी स्पष्ट लिख्या है॥ अरु जीवन्मुक्तिके विलक्षण आनंदका लक्षण। हमनें श्रीसुंदरविलासके विपर्यय अंगकी रहस्य दीपिका नामक टीकाविषे लिख्या है॥ तहां देख लेना ॥ २७॥

उक्त शिष्यकूं हठयोगपूर्वक राजयोगकीयेसैं क्या फल भया? तहां कहे हैः—

॥ दोहा ॥

जीवन्मुक्ति विशेष सुख। किय अनुभव सप्रीति॥ भयो अंत आरब्धको। तज्यो देह शुभ रीति॥२८॥

टीकाः— उक्त शिष्यनैं जीवत् अवस्थाविषै सप्रीति कहिये प्रीतिसहित जीवन्मुक्तिका विलक्षण आनंद अनुभव किया। फेर जब प्रारब्ध कर्मका अंत भया। तब शुभरीति कहिये शास्त्रोक्त रीतिसैं। अर्थ यह जो गंगादि तीर्थके तीररूप पवित्र देश औ उत्तरायणादिरूप पवित्रकालविषै। ब्रह्म ध्यान पूर्वक। देह तज्यो कहिये देहका त्याग किया॥ यद्यपि विद्वानकूं देहत्याग विषै कछु देश काल आदिककी अपेक्षा नहीं। तथापि योगाभ्यासकी प्रबलताकरि तिसनैं शुभरीतिसैं देहका त्याग किया। कर्तव्य बुद्धिसैं नहीं॥ २८॥

१७ अब ग्रंथकार। ग्रंथकी समाप्ति करता हुया ग्रंथके फलरूप मोक्षकूं कहे हैं:—

॥ दोहा ॥

पीवत यह अद्वैत रस। तांहीं होय सुमुक्त॥ बहुरि जन्म होवै नहीं। रहे न रंचक जक्त॥२९॥

टीकाः- यह उक्त प्रकारका अद्वैत रस जो पीवत कहिये पान करेगा। ताकूं शुद्ध ब्रह्मभावकी प्राप्तिरूप स्फ कहिये सुंदर मुक्ति होवैगी॥ औ बहुरि कहिये फेर। देह धारणरूप जन्म नहीं होवैगा॥ काहेतें कि। जातें जन्मरूप गर्भवाला जो अज्ञानादि जगत् है। सो दृष्टिमें रंचक कहिये लेशमात्र बी रहै नहीं। कहिये ज्ञानके बलसें अत्यंत निवृत्त होवै है॥ यातें ता विदेह मुक्तकूं प्राप्त भये विद्वान्कूं फेर जन्म होवै नहीं। यह युक्त है॥ २९॥

प्रश्नः- विदेह मोक्षविषै जन्मादि विकार शून्य जो विद्वान्। ताका क्या स्वरूप है? तहां कहै हैः-

॥ दोहा॥

शुद्ध सच्चिदानंदमय। स्वप्रकाश सो होय॥ माया जगत ज्ञान तजि। ज्योंका त्योंही सोय॥ ३०॥

टीकाः- जो विदेहमुक्तिकूं प्राप्त भया विद्वान् सो शुद्ध सच्चिदानंदमय स्वप्रकाश ब्रह्मरूप होवै है॥ यह दोहेके पूर्वार्द्धका अर्थ है॥

शंकाः- विदेह मोक्षकूं प्राप्त भये विद्वान्का यद्यपि जन्मादि विकार सहित स्वसंघात

रूप जगत् निवृत्त होवै है। तथापि ईश्वर भाव की उपाधि माया औ तिसकरि उपलक्षित ईश्वर भाव औ ईश्वर रचित जगत्। ये तीन मोक्षकालमैं बी अवशेष रहते हैं॥ तातैं विद्वान्कूं जन्मादिकके कारण माया औ ईश्वरभाव-औ जगत्के विद्यमान होते। फेर जन्मादिककी प्राप्ति होवैगी। यातैं भावि जन्मादिकका अभावरूप विदेहमोक्ष सिद्ध होवै नहीं ?

अन्य शंकाः- विदेह मोक्षकालमैं सर्व अनर्थकी निवृत्तिका मुख्य स्वरूप। वा अधिष्ठान होनेतैं बाध करिके स्वरूप। जो विद्वान्का आत्मारूप ब्रह्म। सो ज्ञात है वा अज्ञात है? अज्ञात कहोगे तो विदेहमोक्षकालमैं बी ब्रह्मविषै अज्ञानके होते। विद्वान्कूं जन्मादिकका अभाव संभवै नहीं॥ औ सो ब्रह्म "ज्ञात" है ऐसैं द्वितीय पक्ष कहोगे। तो जो वस्तु ज्ञात है। तामैं घटविषै घटत्वकी न्याई। ज्ञातत्वरूप धर्म अवश्य रहै है॥ सो ज्ञातत्व धर्म। तिस ब्रह्मका विशेषण है वा उपाधि है ? ये दो विकल्प हैं॥ तिनमैं जो ज्ञातत्वकूं ब्रह्मका विशेषण वा उपाधि कहोगे। तो विशेषणकूं वा उपाधिकूं। वर्तमान कालविषै स्वसद्भावके होते व्यावर्तक होनेतैं। वि-

देहमोक्षकालमें अंतःकरणकी वृत्तिरूप ज्ञानके अभावकरि आप ज्ञातत्वके अभाव हुये। ब्रह्म अज्ञातही होवैगा॥ यातें विद्वान्कूं विदेहमोक्षकालमें जन्मादि विकारशून्य अद्वैत ब्रह्मभावकी प्राप्ति संभवै नहीं॥ ये दो शंका हैं॥ तिनके समाधान अर्थ दोहेके उत्तरार्द्धकूं कहे हैं:— माया औ तिसकरि उपलक्षित ईश्वरभाव औ ईश्वररचित जगत् औ मोक्षका हेतु ज्ञान। इन सर्वका त्याग करिके। सो विद्वान् ज्योंका त्योंही होवै है॥ कहिये जन्मादि विकारशून्य ज्ञातस्व उपलक्षित अद्वैत ब्रह्मरूप हुवा स्थित होवै है॥ यह दोहेके उत्तरार्द्धका अर्थ है॥ इहां "माया ईश्वरभाव औ जगत्। इनका त्याग करिके" इस कहनेकरि पूर्व उक्त प्रथम शंकाका समाधान कहा औ ज्ञानका त्याग करिके" इस कहनेकरिके पूर्व उक्त द्वितीय शंकाका समाधान कहा॥ तिनमें प्रथम शंकाके समाधानका रहस्य यह हैः— जैसें दश पुरुषनकूं रज्जुविषे सर्पकी भ्रांति होवै। तहां जिसकूं रज्जुका ज्ञान होवै। तिसकी दृष्टिसें स्वपरकी भ्रांतिका विषय सर्प। अत्यंत निवृत्त होवै है॥ औ जिनकूं रज्जुका ज्ञान नहीं भया। तिनकी दृष्टि-

सें भ्रांतिका विषय सर्व ज्योंका त्यों स्थित है॥
जैसें जिसकूं अधिष्ठान ब्रह्मका ज्ञान भया है।
तिसकी दृष्टिसें स्वपरकी भ्रांतिके विषय माया
ईश्वरभाव औ जगत्। निवृत्त होवैं हैं॥ औ
जिनकूं अधिष्ठान ब्रह्मका ज्ञान नहीं भया। ति
नकी दृष्टिसें माया। ईश्वरभाव औ जगत्। ये
त्योंके त्यों अनादि सिद्ध हुये स्थित हैं॥ यह प्र
थम शंकाके समाधानका रहस्य कहा॥ ॥ द्वि
तीय शंकाके पूर्वउक्त समाधानका रहस्य यह है:-
जैसें काकयुक्त देवदत्तके ग्रहका। काकपक्षी उ
पलक्षण है॥ वर्तमानकालविषै औ भविष्य-
कालविषै जो जाका व्यावर्तक (अन्योंसें भिन्न
करिकें जनावनेवाला) होवै। सो ताका उपलक्ष
ण है॥ जातें काकपक्षी। वर्तमानकालविषै आ
पके सद्भाव हुये औ भविष्यकालविषै आपके-
अभाव हुये बी "यह काकयुक्त ग्रह है" इस-
रीतिसें देवदत्तके ग्रहका अन्य काकसंबंधरहि-
त ग्रहोंतें व्यावर्तक है॥ यातें सो काक। देवदत्त
के ग्रहका उपलक्षण कहिये है॥ तैसें विद्वान्‌का
स्वस्वरूपभूत ब्रह्म। ज्ञानका विषय होनेतें ज्ञा
त है। तिस ज्ञात ब्रह्मविषै ज्ञातत्वरूप धर्मकी
कल्पना होवै है॥ सो ज्ञातत्वरूप धर्म ब्रह्मका

उपलक्षण है। ऐसैं हम अंगीकार करै है॥ जातैं ज्ञा तत्वरूप धर्म। वर्तमान जीवन्मुक्तिकालविषे आप के सद्भाव हुये औ भविष्य विदेहमुक्तिकालविषे आपके अभाव हुये बी "यह विद्वान्‌का स्वरूपभू त ब्रह्म। ज्ञात (ज्ञातत्वरूप धर्मवाला) है"॥ इस रीतिसैं विद्वान्‌के स्वरूपभूत ब्रह्मका। अविद्वानो के स्वरूपभूत अज्ञात (अज्ञानकरि आवृत) ब्र ह्मतैं व्यावर्तक है। यातैं सो ज्ञातत्वरूप धर्म। वि द्वान्‌के स्वरूपभूत ब्रह्मका उपलक्षण है॥ तिस ज्ञा तत्वरूप उपलक्षणकरि युक्त जो कल्पितकी निवृ- त्तिरूप विद्वान्‌का स्वरूपभूत ब्रह्म। सो ज्ञातत्वो- पलक्षित कहिये है॥ इस रीतिसैं विदेहमोक्षका लमैं ज्ञातत्वरूप धर्मके अभाव हुयेबी "यह वि द्वान्‌का स्वरूपभूत ब्रह्म। ज्ञात है" ऐसैं अन्यज- नोकरि व्यवहारबी करिये है औ विद्वान्‌कूं विदेह मोक्षकालविषे द्वैतापत्तिबी नहीं है॥ यातैं हमारी कथन सर्व समंजस (श्रेष्ठ) है॥ ३०॥

९८ ॥टीकाकी उक्ति॥

॥ग्रंथोपसंहार॥

॥कुंडलिया॥

नमो नमो गुरुदेवजू। बापू रामभि

लोक॥ जिनकी करुणातैं भयो। पर

मानंद अशोक ॥ परमानंद अशोक । शोकको ओक उखास्यो ॥ भ्रम सं देह विहीन । तत्व निजउरमें धा- स्यो ॥ पीतांबर अवलोक । लोकहि ततोक सुफियो ॥ बालबोधिनी स- हित । बालबोध हिं ता नसो ॥ १ ॥

॥ संस्कृत आर्या छंदः ॥

पीतांबर कृत बालक बोधिनियुतवा लबोधको ग्रंथः ॥ सुरगिरमजानतां सो भूयान्निःश्रेयसं मुमुक्षूणाम् ॥ २ ॥

॥ दोहा ॥

शिष अनुभव उगार ग्रह । गमन योग स त्याग ॥ ग्रंथसमाप्ती कह भयो । नवम पूर्नवड भाग ॥ ९ ॥

इति श्रीमहाप्रु पूज्यपाद पदारविंद मिलिंद । ज्ञ स सारस्वत ज्ञातीय । श्रीपुरुषोत्तम वीरवत्यात्मज । पंडित पीतांबर विरचित । बालबोधिनी नामक टीका सहित बालबोधे शिष्यानुभवोद्गार ग्रहगमन ससं न्यास योग स्वीकार कथनपूर्वक ग्रंथोपसंहार वर्ण न नामक नवमोपदेशः समाप्तः ॥ ९ ॥

॥ समाप्तोऽयं बालबोधः ॥

॥ मुमुक्षूणां मोक्षदो भूयात् ॥

॥ हिंदीभाषाके वेदांतके ग्रंथ बेचनेके हैं ॥

	कि. रू.	ट.
श्रीबालबोध सटीक। विनापूंठेकी ।॥= पूंठासहितकी	१	८-
ईशाद्यष्टोपनिषद् भाषाटीकासहित	६	।-
श्रीवेदांतपदार्थमंजूषा अर्थात् वेदांतपदार्थकोश.	४	।.
गुर्जरभाषा औ अन्वययुक्त श्रीवेदस्तुति। आगे ।॥= अबी	।=	८=
श्रीविचारचंद्रोदय	।॥.	८=
श्रीपंचदशी भाषाटीका युक्त।आगे ९ पीछे	७	।॥.
पंचदशी भाषा प्रथम प्रकरण	।॥.	८=
पंचदशी भाषा प्रथम औ पंचम प्रकरण	५	८-
श्रीवृत्तिरत्नावलीसहित विचारसागर	२	८=
उलटअंगकी टीकायुक्त श्रीसुंदरविलास	२	८=

श्रीपंचदशी मूलमात्र। श्रीरूपकादर्श। प्रमादमुद्गर औ बोधरत्नाकर ये ३ होनेके हैं ॥